अथाह जल राशि का स्वामी समुद्र अपने ही अंश से बने बादल से सदैव नीचा रहता है।

क्यों—

समुद्र का जल खारी होता है और वह इन्सान की प्यास बुझाने में समर्थ्य नहीं रखता।

जबकि एक नन्हा सा बादल अपनी उपकारक वृत्ति के कारण सदैव उससे बड़ा होता है। मुनि श्री सुशील कुमार जी का जीवन समुद्र जैसा विशाल होते हुये भी बादल जैसा परोपकारी है। उनके अभयदान की कहानी बड़ी विशाल है।

आइये इस कहानी का रसास्वादन उनकी गरिमा वाणी के साथ लेंवे।

प्रस्तुतकर्त्ता—जय प्रकाश शर्मा

संयोजक :

जयप्रकाश शर्मा की

अन्य महत्

- जय देश, जय इन्दिरा
- युवानेता संजय गांधी
- आत्म संयम
- एक जीवन करोड़ तत्व
- अहिंसा परिव्राजक मुनिश्री सुशील कुमार जी
- जीयो और जीने दो

अभय दान
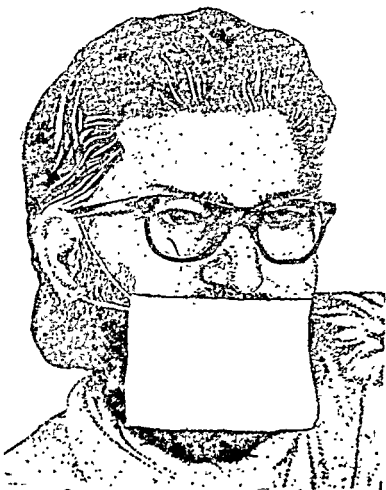
मुनि श्री सुशील कुमार जी
महाराज कृत

अहिंसा परिव्राजक मुनिश्री सुशील कुमार जी

प्रेरक :

मुनि श्री सुभाग जी महाराज

●

प्रकाशक : नरेश चन्द्र जैन अध्यक्ष

कमला पॉकेट बुक्स, मेरठ

●

संयोजक : जय प्रकाश शर्मा

मूल्य—तीन रुपये

मुद्रक :

मैसर्स पीयूष प्रिन्टर्स,
३२, शिवाजी मार्ग, मेरठ
फोन : ७५०३०

ABHAYADAN MUNISRI SUSHEEL KUMAR JI

इसे मैं एक बहुत बड़ा संयोग और शुभयोग ही मानता हूँ कि तीर्थंकर भगवान महावीर के परिनिर्वाण समारोह के सम्पन्न होने के साथ देश में अनुशासन पर्व का शुभारंभ हुआ और प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कोटि-कोटि भारतीयों के लिये २० सूत्रीय कार्यक्रम का श्री गणेश किया। ऐसे सुअवसर पर जब मुनि श्री सुशील कुमार जी विश्व को अहिंसा का संदेश देकर पुनः भारत आ रहे हैं तो हम आदरणीय मुनिवर सुभाग जी की कृपा से पांच पुस्तकें आपको भेंट कर रहे हैं। इस पुस्तक माला के संयोजक देश के जाने माने राष्ट्रीय उपन्यासकार श्री जय प्रकाश शर्मा हैं, इन पुस्तकों के आवरण-शिल्पी श्री सुबोध मिश्रा हैं। समस्त मित्रों के सहयोग से ये पुस्तकें उस पुण्य भूमि को समर्पित है, जहां राम, कृष्ण, महावीर, महात्मा गांधी, मुनि सुशील कुमार, और देश-गौरव प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्द्रिरा गांधी के साथ-साथ हम सबने जन्म लिया।

अध्यक्ष
नरेश चन्द जैन
कमला पॉकेट बुक्स
५६-गौरा महल, मेरठ

संदेश

मुनिवर श्री सुशील कुमार जी केवल जैन धर्म के ही नहीं अपितु विश्व धर्म के एक बहुत शक्तिशाली स्तम्भ हैं। उनके व्यक्तित्व में तेज वाणी में ओज और विचारों में धार्मिक दृढ़ता है। वे एक निर्भीक क्रांतिकारी और प्रभावशाली संत हैं। उन्होंने रूढ़िवादिता को त्याग कर सारे विश्व का भ्रमण कर जैन दर्शन व धर्म के साथ प्राणि-मात्र को आध्यात्म का जो संदेश दिया उससे हम सब गौरवान्वित हैं। विदेश यात्रा को सफल कराकर वे ११ अप्रैल को स्वदेश लौट रहे हैं। उनके दर्शनों के लिए भारत की कोटि-कोटि जनता अभिलाषित है।

इस विषय में उनकी वाणी का जो संकलन आप प्रकाशित कर रहे हैं वह प्रशंसनीय है और वह जन-मानस की रास-पिपासा की संतुष्टि के लिये सराहनीय प्रयास है। मैं आपकी प्रकाशन क सफलता की प्रार्थना करती हूं।

ओमप्रभा जैन

गंगा से पवित्र

गंगा का महत्व इसलिये अधिक है कि वह अपने पितगृह हिमालय से निकल भारत भूमि के आधे भाग को जीवनदान देती हुई विशाल सागर में समा जाती है। गंगा की तरह ही पुनित हिमालय की तरह उन्नत सयंमी चरित्र के स्वामी विश्ववन्दनीय मुनि सुशील कुमार जी ने भी अपने कार्यवाणी और शिक्षा से असंख्य लोगों को अभयदान दिया है। जो मुनि श्री के सम्पर्क में आये हैं उनका हृदय महाराज जी की निश्चलता एवम् परोपकारी वृति से ओतप्रोत है। मुनि सुशील कुमार जी ने एक सम्मेलन में धर्म गुरुओं को सम्बोधित करते हुये विश्व धर्म सम्मेलन के संदेश में कहा था—

'धर्म मानव जाति को एक सूत्र में बांधने की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। समूचे विश्व को एक कुटुम्ब का रूप धर्म ही दे सकता है—क्योंकि धर्म आत्मा का संगीत है। उसे हम किसी सम्प्रदाय, पंथ, भाषा या व्यक्ति से नहीं बांध सकते।

अगर धर्म के मानने वाले संसार के सभी जन किसी एक सम्बन्धी-समस्त संहिता पर सहमत हो जाये और धर्म के मंच से आबद्ध हो सकें तो वर्तमान के अवन्ध्या युग में धर्म अभियान नई पीढी और नये समाज रचना में सबसे मूल्यवान विरासत के रूप में प्रतिष्ठित हो सकता है।

वस्तु की जानकारी एवं उसका भर्मभिद विज्ञान हो तो धर्म आत्मानुभूति और शाश्वत सत्य खोज है।

संवेदनशीलता, करुणा एवं दया सांस्कृतिक विकास की शर्त है तो धर्म का सार संवेदनशीलता ही है। इसके बिना विश्व-मैत्री एवं विश्व कुटुम्ब की भावना का विस्तार सर्वथा असंभव है।

विश्व धर्म सम्मेलन समाज में शाश्वत मूल्यों की प्रतिष्ठा करना चाहता है और मानव को परिपूर्णता बोध का दिशा निर्देश।

मानव को महामानव एवं अति मानव के उच्चादर्श तक पहुंचने के लिये विज्ञान ही केवल सहारा नहीं बन सकता अपितु धर्म भी उसकी सहायता कर सकता है।

मुझे प्रसन्ता है कि जिस संस्था को १९४५ में बम्बई के सुन्दराबाई हाल में छोटे रूप में स्थापित किया था।—आज उसका स्वरूप विश्वविराट् बनता जा रहा है। विश्वव्यापी स्तर से उसके तीन सम्मेलन हो चुके हैं और अब चतुर्थ अधिवेशन ६,७ और ८ फरवरी १९७० को सम्पन्न होने जा रहा है।

मुझे विश्वास है कि विश्वधर्म संघ क्रमशः प्रगति कर रहा है। १९५४ से १९५७ तक इसका विश्वजनीन रूप बना। १९६० के सम्मेलन तक विश्व के धर्माचार्यों का एक परिवार बनने लगा। १९६५ में विश्व के भूभागों में इसकी शाखाये खुल गई और अब यह वटवृक्ष की तरह समूचे संसार को अपनी शीतल छाया देने लगा है। मुझे विश्वास है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की तरह धर्म सम्मेलन सब राष्ट्रों को सांप्रदायिक एकता की गारन्टी सभी धर्मों के मानने वालों को सुरक्षा का आश्वासन और मानव

समाज की अनन्त गरिमा तथा मूलभूत एकता को बचाये रखने की दिव्य शक्ति बन सकता है।

विश्वशान्ति एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष के महत्वपूर्ण अभियान में धर्म सम्मेलन परमात्मीय प्रेरणा है और शाश्वत सत्यानुभूति पर अवस्था रखने वालों को सहयोग के लिये आह्वान करता हूं, आग्रो धर्मबन्धुओं, हम सब मिलकर प्रतिज्ञा करें कि हम सब धर्म वाले एक है समस्त मानव जाति को आध्यात्मिक एकता में बांधना, हमारा लक्ष्य है।

सभी सम्प्रदायों में सामजस्य स्थापित कर विश्व शान्ति का का मार्ग हम प्रशस्त करेंगे और हम के नाम कर होने वाले दुष्कर्मों के सदा लिये दूर करेंगे।

वास्तव में आज के वैज्ञानिक युग ने आदमी को चांद पर खड़ा कर धर्मवालों को चुनौती दिलवाई है कि अगर धर्म शाश्वत मूल्य है तो उसे मानवात्मा उंडेल दो। अन्यथा उसकी उपयोगिता संदिग्ध है और उसका जीवन धूमिल है

धर्म के मानने वालों उठो, मिलकर चलो, मिलकर बोलो और मिलकर मानवता का निर्माण करो।

करूणा से ओत-प्रोत

मुनि सुशील कुमार जी दया की साक्षात् मूर्ति जैसे हैं। प्राणी मात्र के लिये उनके मनमें करुणा से भरा ऐसा समुद्र है जिसका कोई ओर-छोर नही है। सेवा उनके जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है और प्राणी मात्र को अभयदान देना उनका नितक्रन है। अपने संयमी जीवन में वे कितने व्यवस्थ रहते हैं और किस तरह उनका सारा जीवन एक सैनिक के जीवन की भांति तत्परता से कर्तव्य की वाट जोहता है। ये वास्तव में एक नवीन शक्ति का प्रतीक वन गया है।

मुनि मुशील कुमार जी के मन में मुनि श्रेष्ठ सुभाग जी के संस्मरणों का उल्लेख करना आवश्यक है।

त्रेता में राम व लक्ष्मण का भाई चारा उदाहरण वनकर सामने आया था। पिता की आज्ञा राम को हुई थी। वनवास राम को जाना था लेकिन लक्ष्मण ने सहज रूप से वन जाना न केवल स्वीकार किया वल्कि अपनी इच्छा से उन्होंने राजशी वस्त्र उतार फेंके और वड़े भाई के पद-चिन्हों पर चलकर वनवास की परेशानियों में अपने आपको अहोभाग्य माना। राम और लक्ष्मण में जैसा स्नेह था वैसा ही स्नेह मुनि सुशील कुमार जी और मुमि श्री सुभाग जी में देखने को मिलता है। गुरू भाई होने के नाते तो प्यार है ही मगर दोनों एक दूसरे पर न्यौछावर होने को प्रस्तुत रहते हैं। सुभाग मुनि छाया की तरह मुनि श्री के

साथ वर्षों से रहते आये हैं। मगर एक समय ऐसा भी आया कि जब सुभाग मुनि को दौरा पड़ा और मुनिश्री विह्वल हो उठे। बेचैन मन लिये वे रातों जागते रहे और जब तक गुरु भाई पूर्ण स्वस्थ न हो गये उन्होंने चैन महसूस नहीं किया।

उनकी सहजता का दर्शन उनकी निर्भिक वाणी में अवसर होता आया है। बहुत वर्ष पहले मुनिश्री ने निर्भिकता से कहा था अगर आध्यात्मिक संस्कार कम होते जायेंगे तो भ्रष्टाचार बढ़ते जायेंगे।

अन्तरात्मा के समर्थन पर खड़ी की गयी न्याय व्यवस्था आध्यात्मिक संस्कारों से प्रेरित विश्व की एकता और मानव जाति की नैतिक अखंडता धार्मिक विचारो के बिना असम्भव है। आज कानून का कोरा तर्क जाल हमारे अन्तरात्मा को पीछे छोड़कर अकेला ही इन्द्रियों के लिये भोगों को और मन के लिये स्वच्छन्दताओं की एवं नैतिक अंध पतन को जिस बुरे तरीके से में अभिवृद्ध कर रहा है। उनको रोकना बहुत जरूरी है।

आत्मसंयम एवम् आत्मानुशासन के बिना मनुष्य अपना अधिशास्ता नहीं बन सकता। न्याय के पीछे जब तक सत्य और शिव नहीं जुड़ जायेंगे कानून के पीछे जब तक अन्तरात्मा की आवाज नहीं जुड़ जायेगी, तब तक एकता का स्वपन्न कभी पूरा नहीं हो सकता और युद्ध के छाये हुये बादल विश्व के आकाश से दूर भगाये नहीं जा सकते।

मुनि जी ने आगे कहा—मैं मानता हूं कि—धर्मान्धता मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है, क्योंकि वह बुद्धि को ही अज्ञान के कुहरे में नहीं डालता अपितु मनुष्य को मनुष्य से घृणा सिखाता है। ठीक उसी तरह नास्तिकता भी मनुष्य-जाति का सबसे बड़ा

शत्रु है, क्योंकि वह स्वयं अपने आप में आत्मघातक और आत्म विनाशक सिद्धांत है—जो अपने आप से ही अपने आप के प्रति अनादरवान बनता है।

आज हमारे देश के सामने जो समस्यायें है, एक तरफ से धर्मान्धता हमें दबोचे चली जा रही है, और धर्म के नाम पर जिहाद के नारे सुनाई पड़ रहे हैं। दूसरी ओर नास्तिकता हमें पराधीन बनाने के लिये लालयित है। जरा ख्याल कीजिये, आज देश की सीमाओं पर धर्मान्धता और नास्तिकता आपस में समझौता कर रही हैं। आखिरकार धर्मान्धता और नास्तिकता एक ही सिक्के के दो पहलू है।

विश्व-धर्म सम्मेलन का प्रारम्भ १९५४ में बम्बई में हुआ था। इस अभियान को चलाने के लिये मेरे मन में यही एक भावना थी कि भाषा के भेद और वर्ण-व्यवस्थाओं के विद्वेष बिना धार्मिक सार्वभौम रूप को समझ नहीं सकते। अतः इसी देश में तीसरे विश्व-धर्म सम्मेलन की जो आवाज उठी है, इसके पीछे पचास राष्ट्रों के धर्म-प्रतिनिधियों का समर्थन हैं। उनका यह कहना है कि संसार की धार्मिक शक्तियों का सांझा मोर्चा बनाने में भारत आज पहल करे। संसार के प्रारम्भिफ इतिहास में धर्म की मूल प्रेरणा भारत से उठी थी तो धार्मिक एकता की आवाज भी भारत से उठनी चाहिये।

आपको यह जानकर खुशी होगी कि तृतीय विश्व-धर्म सम्मेलन का निर्णय विश्व-धर्म संगम ने तब किया जब कि पचास मुल्कों का समर्थन प्राप्त हो गया। आज संसार के धार्मिक प्रतिनिधि भारत में आने के लिये लालायित हैं। वे यहां धर्म का सार्वभौमिक रूप देखना चाहते हैं, जिससे विश्व में धार्मिक

एकता का जाग्रत किया जा सके और दैवी परम्पराओं को उद्बुद्ध
किया जा सके।

मैं भारत के तमाम लोगों से यह अपील करना चाहता हूं कि
वे आध्यात्मिक संस्कारों को पुनः-प्रतिष्ठित करें—जिससे हमारे
देश में व्याप्त भ्रष्टाचार दूर हो। खण्डतायें अखण्दता में लय हों
जिससे हम व्यक्ति को समिष्ट में और राष्ट्रों को अन्तर्राष्ट्रीय
जगत में आबद्ध कर सकें।

हमारे आत्मीयता का प्रेम-बन्धन ही सब विषमताओं को दूर
कर समान भाव से समस्त मानव जाति को अपने आप में आबद्ध
कर सकता है। इसी भावना से तृतीय विश्व-धर्म सम्मेलन का
आह्वान हमारे देश में उठा है। इस स्वप्न को साकार करना
हमारे देश के प्रत्येक नागरिक का परम कर्त्तव्य है।

—:o:—

"जैन मुनिश्री सुशील कुमार जी के सद्‌प्रयासों से मजहबी उबाल शान्त"

राजधानी में सिकन्दरिया मस्जिद एवं अन्य मस्जिदों के मामलों को लेकर दिल्ली की बिगड़ी हुई फिजा को जैन मुनि श्री सुशील कुमार जी ने अपने सद्‌प्रयासों से फिर से स्वस्थ कर दिया है। राजधानी में साम्प्रदायिक एकता के प्रयासों के लिये मुनि जी की सर्वत्र प्रशंसा की जा रही है। गिराई हुई मस्जिदों के मामलों को लेकर डा० अब्बास मालिक ने भूख हड़ताल कर रखी थी। राजनीतिक वातावरण काफी तनावपूर्ण था राजधानी में बढ़ते हुए मजहबी उबाल से घबड़ाकर विभिन्न वर्गों संप्रदायों राज नेताओं एवं बुद्धि चेताओं तथा दिल्ली के शहरियों ने जैन मुनि श्री सुशील कुमार और सन्त कृपाल सिंह जी महाराज से अपील की थी कि वे इस मामले में तुरन्त हस्तक्षेप कर दिल्ली की फिजा को खराब होने से बचाये ताकि आवाम सुख और चैन की सांस ले सके।

इस अपील पर सबसे पहले जैन मुनि श्री सुशील कुमार जी का ध्यान गया और उन्होंने १ जुलाई की शाम को लेडी हार्डिंग रोड स्थित जैन भवन से विभिन्न संप्रदाओं एवं वर्गों के प्रतिनिधियों की एक बैठक बुलाकर सांप्रदायिक एकता के लिये मार्मिक अपील की। उस अपील का तत्काल असर पड़ा और

डा० अब्बास ने जैन मुनि श्री सुशील कुमार जी के सद्परामर्श से अपनी भूख हड़ताल समाप्त कर दी ।

आगे भी राजधानी में स्थायी एकता के लिये और सांप्रदायिक मेल मिलाप के लिये जैन मुनि श्री सुशील कुमार जी विभिन्न संप्रदाओं के नेताओं से बराबर व्यक्तिगत भेंट कर रहे है। और राजधानी में अपने सांप्रदायिक जहर न फैले इसके लिये ठोस एवं रचनात्माक कदम उठाने के लिये विभिन्न योजनाओं को कार्यक्रम में परिणित करने में लगे हुए है।

भगवान महावीर—

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन कुन्डन पुर नगर दीपों की ज्योति से जगमगा उठा था। शहनाई और तुरही की ध्वनि से आकाश और पाताल गूंज रहे थे। क्योंकि इस दिन कुन्डनपुर नरेश सिद्धार्थ के प्रांगण में दिव्य प्रसून खिला था। माता त्रिशला की सूनी गोद इसी दिन हरी हुई थी।

ऐसे पुत्र को पाकर राजा की प्रसन्ता का कोई ठिकाना न रहा। पुत्र प्राप्ति की खुशी में राजा ने राजकोष का मुंह खोल दिया। ज्योतिषियों के परामर्श से बालक का नाम वर्द्धमान रखा। आठ वर्ष की आयु में ही यह बालक अपने साथियों का लोकप्रिय नेता बन गया। एक दिन वह बच्चों के साथ खेल रहा था। खेल था एक वृक्ष पर बारी-बारी से चढ़ने का। जब वर्द्धमान वृक्ष पर चढ़ा तो एक विकराल सर्प ने वृक्ष के तने को चारों ओर से घेर लिया। मित्र भाग निकले। परन्तु महावीर डरे नहीं। उस फुंकारते सर्प को अपने हाथों से कमल नाल की तरह पकड़ कर दूर फेंक दिया।

विवाहित महावीर—

सांसारिक लोगों की मान्यता में विवाह यदि वरदान है तो ठीक यौवन में महावीर का भी विवाह हुआ था। राजा समरवीर की लड़की अनन्य सुन्दरी यशोदा से प्रिय दर्शना नाम की लड़की भी उत्पन्न हुई। परन्तु वे इस मायावी जगत में उलझे नहीं। इनके लिये जिन्दगी थी आत्मा शोधन में।

जब ये २८ वर्ष के थे तो इनकी माता का हाथ इनके सिर से उठ गया। कुछ दिनों बाद पिता भी परलोक सिधार गये। सारी नगरी शोकाकुल थी। बड़े भाई नन्दिवर्धन महावीर के होते हुवे राज्य सिंहासन पर बैठना नहीं चाहते थे और महावीर नन्दिवर्धन को ही राज्य का उत्तराधिकारी समझते थे क्योंकि वे जेष्ठ भ्राता थे। प्रजा का आग्रह भी था और भाई का भी। हृदय में वैराग्य की उन्नत तरंगें हिलोरें ले रही थी। परन्तु भाई के आदेश और आग्रह के आगे इन्हें नतमस्तक होना पड़ा। मन की मन में ही रह गई। कुछ समय के लिये इन्हें और गृहस्थ आश्रम में रहना पड़ा। पिता के निधन का दुख और भाई भूल जाये इसलिये दो वर्ष तक वे घर में और रहे।

प्रतिदिन महावीर प्रभूत सुवर्ण दीनारें दान देते थे। उनका दान प्रवाह एक वर्ष तक निरन्तर चलता रहा। ऊंच-नीच भिखारी, गरीब, अमीर और ब्राह्मण सभी उनके दान के अधिकारी थे।

साधु के रूप में—

ज्ञात खण्ड उद्यान में ३० वर्ष की आयु में महावीर ने अशोक वृक्ष के नीचे संयम ग्रहण किया। संसार को छोड़ सन्यासी बने।

संसार को त्यागते समय उनका अंग-अंग मुस्कुरा रहा था। परन्तु सम्बन्धियों की आंखों में बह रहे थे अविरल आंसू।

उसके बाद महावीर तन-मन से साधना में जुट गए। उन्होंने लगातार १२ वर्ष ५ मास १५ दिन तक तपस्या की। इस अवधि में १४६ दिन दिन केवल आपने अन्न-जल किया। चन्द्रजुवालका नदी के तट पर उन्हें शाल वृक्ष के नीचे वैशाल शुक्ला दशमी के दिन केवल चौथे पहर के समय केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त हुआ। इस दिन साधक की साधना पूरी हुई।

—:o:—

जन कल्याण के पथ पर

अब महावीर जिन्न हो गये थे। अपनी दुर्बलताओं पर उन्होंने विजय प्राप्त कर ली थी। परीक्षाओं में तपकर वे शुद्ध कुन्दन हो गये थे। अब वे जंगलों को छोड़कर मानव समाज में आ गये और जनता को उपदेश देने लगे। उन्होंने कहा:—धर्म अहिंसा में निवास करता है। इन्द्रियों का संयम और इच्छाओं का निरोध भी धर्म है। धर्म त्याग में है, मोह में नहीं। धर्म किसी देश जाति वर्ण या वर्ग की वपौती नहीं है। सत्य अहिंसा और तप ही धर्म के मूल स्रोत है।

धर्म संघर्षों को जन्म नहीं देता। इसकी छाया मात्र से ही सर्वत्र सुख और शान्ति का साम्राज्य छा जाता है। उसकी अमोघ शक्ति के सम्मुख संसार की सभी कुत्सित और संहारक शक्तियां कुंठित हो जाती है। अतः सुख और शान्ति के अभिलाषी प्राणियों अपने जीवन में धर्म को आश्रय दो।

ए मानव अपने भाग्य का तू स्वयं निर्माता है। नरक एवं स्वग सब तेरी ही शुभ व अशुभ प्रवृतियों के परिणाम है। आत्मा स्वयं कर्मकर्ता है और स्वयं ही उसके फल को भोगता है। दुख तथा सुख फर्ता वह आप ही है अर्थात आत्म ही हमारा शत्रु तथा आत्मा ही हमारा मित्र है।

प्रभु ने कहा—'सम्यक चरित्र ही जीवन का निर्माता है। जन्म से मानव की कोई जाति नहीं है। वर्ण व्यवस्था का फल

जन्म नहीं, कर्म है। शूद्र कर्म से ब्राह्मण हो सकता है और ब्राह्मण कर्म से शूद्र हो सकता है।

"कम्मुणा बम्भणो होई,
कम्मुणा होई खत्तिओ॥"

वेश का महत्व इस जीवन में नहीं है। सिर मुंडा लेने से कोई साधु नहीं बनता। एकान्त जंगल में जीवन यापन करने से कोई मुनि नहीं बन सकता। अन्तरंग जीवन की शुद्धि ही वास्तविक शुद्धि है। बाह्याडम्बर तेरे जीवन को उच्च नहीं बना सकते। अतः मन को शुद्ध कर, वचन शुद्ध रख और शुद्ध ही तेरा आचरण होना चाहिए।

प्रभु ने कहा—"ए मानव, जैसे तुझे अपनी जिन्दगी प्यारी है, वैसे ही दुनियां के सभी जीव-जन्तुओं को। सभी इस विश्व में जीना चाहते हैं। अतः तू किसी को मत मार। जो तू अपने लिये नहीं चाहता वह दूसरों के लिये मत कर। अर्थात "आत्मनः प्रतिकूलानि परेषान् न समाचरेत्" के इस सुनहरी सिद्धान्त को अपनी दृष्टि के सम्मुख रखते हुए इस संसार में तू कमल की तरह निवास कर। संसार रूपी जाल में वास करते हुए भी उससे निर्लेप रह। सत्ता का प्रतीक पैसा है। मनुष्य अधिकारों का भूखा है और पैसे का गुलाम। पैसे के सिंहासन के नीचे मनुष्यों को उसने लोहे की शृंखलाओं से आबद्ध कर रखा है। अधिकारों की दौड़ में उसने मनुष्यों के खून से रंगरलियां मनाई हैं। समता के बिना विषमता नहीं मिटेगी विरक्ति के बिना विरति नहीं आवेगी। आत्मज्ञान, आत्म श्रद्धा और आध्यात्मिक सच्चरित्र के बिना आधि व्याधि नहीं मिटेगी, जन्म जरा नहीं मिटेगी भव-चक्र के मिटे बिना मुक्ति नहीं आवेगी निर्वाण नहीं मिलेगा।

उपदेश का प्रभाव

प्रभु की वाणी से प्रभावित होकर एक ही दिन में ११ पंडित भगवान के शिष्य बन गये इन्ही शिष्यों ने भागवान के परम पावन उपदेश को भारत के कोने-कोने में फैलाया उन्होंने कहा था कि कोरा ज्ञान लंगड़ा है और कोरा चरित्र अन्धा, समूचा जगत दो भागों में विभक्त है। अन्धों के रूप में या पंगुओं के रूप में कोई व्यक्ति क्रियाकांड के झमेले में इतना फंसा हुआ है कि उसे सूझता ही कुछ नहीं ! कोई ब्रह्मवाद की चर्चा दिन रात करता है किन्तु आचरण में वह राक्षस है। यह दोनों अधूरे हैं।

एक शोषित है—श्रम चूसता व मनुष्यों की महानताओं को पैसों से खरीदता है किन्तु श्रमहीन है। ये दोनों हीनता और अहंकार के शिकार है और अपूर्ण है। यह जगत एक बाग है और दुनिया के लोग उस पंगु और अन्धे के समान हैं जो पके हुए फल को देखकर तरसा करते हैं क्योकि पंगु फल तक जा नहीं सकता और नेत्रहीन होने के कारण अन्धे को कुछ दिखाई नहीं देते। ज्ञानहीन माली अन्धा है केवल इधर-उधर वह भटकता रहता है। ज्ञान रहित क्रिया का यही फल है। क्रियाहीन ज्ञानी माली पंगु है। मोक्ष ही पूर्णतः दुखों का निरोध है। इतना जानने पर भी जो सदाचार और सयममय जीवन व्यतीत नहीं करता, उसका ज्ञान केवल तोता रटन्त है। आचरणहीन ज्ञान निस्सार है। चन्दन का भार गधे पर हो तो गधे को कोई लाभ नहीं।

अन्धों और लंगड़ों का मेल

प्रभु बोले—धर्म अन्धों को अर्थात कोरे क्रियाकांड में उलझे हुओं को ज्ञान के चक्षु प्रदान करेगा। जिससे वह अपना लक्ष्य निर्धारित कर सके। धर्म पंगुओं को सदाचार के पैर देकर [illegible]

यह यथेष्ठ गति-प्रगति कर सके।

भगवान ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आचार शास्त्र के मालाधार तत्व बताके हैं। अहिंसा रूप आचार, सत्यहीन वाणी अनाधिकार चेष्टा अब्रह्मचर्य हीन जीवन तथा लोभ ग्रस्तमन जीवन के लिये अभिशाप है। आचार तथा नीति शास्त्र के यही मूलभूत सिद्धान्त हैं। अहिंसा और सत्य हमारे पग हैं जिन पर यह जीवन की मित्तिया स्थिति है। विचारों का समन्वय ही अनेकान्तवाद है। समस्त विचारधारायें आंशिक सत्य को लिये हुए वह रही है। समुदाय और कथित धर्म सत्य को समझने की एक-एक धारा है। किन्तु पूर्ण सत्य नही। पूर्ण सत्य तो अनेकात्मक पद्धति ही है।

निर्वाण से पहले

निर्वाचन से कुछ क्षण पहले प्रभु बोले—"गौतम तुम सोच रहे हो कि मेरे बाद कोई नहीं रहेगा। मार्ग दर्शन कौन करेगा? हे गौतम ! यह शाश्वत जिन वाणी ही तुम्हारा मेरे बाद मार्ग-दर्शन करेगी।"

दीपावली का अन्तिम पहर था। हस्तीपाल राजा की रज्जुग सभा में प्रकाश देते हुए ज्योति निर्वाण को प्राप्त हुई और अपनी वाणी का प्रकाश हमारे लिये छोड़ गई।

—:o:—

धर्म शाश्वत सत्य :

धर्म आत्मा का अध्यात्मिक संगीत है। यह धर्म भाव ही तो मानव जाति को उसके शैशवकाल से ही सुसंस्कृत, सभ्य और सुसंगठित करता आया है। समस्त धार्मिक दर्शन और विचार-मय आंशिक सत्य की प्रवह्यान नदियां हैं। धर्म-भावों के महा-समन्वय का विराट् सिन्धु ही विश्व-धर्म है। इसे श्रमण महावीर के अनेकान्त सिद्धान्त से समझा जा सकता है।

बुद्ध का विभाज्यवाद शंकराचार्य का समन्वयवाद, ईसा का अनुग्रहवाद तथा पैगम्बर मुहम्मद के भ्रातृभाव द्वारा इसी धर्म-भाव का पोषण होता है। अहिंसा, प्रेम और सहयोग ही धर्म का भाव है। अहिंसा की व्याख्या, व्यापक भाव, निर्भयता और निरहंकार भाव में समाहित है।

कबीर की निर्गुण पूजा, सन्त नानक की बन्धु भावना, रामकृष्ण परमहंस का मैत्रीभाव और महात्मा गांधी का सर्वोदय सभी उसी परम धर्म की उद्घोषणायें हैं। वह परम धर्म का अनेक रूपों में रहकर भी एक है। ध्रुव है और शाश्वत सत्य है।

एशिया धर्मों की जन्मभूमि है। एशिया के तमाम धर्मों के प्रवर्तकों की वाणी का सार एक ही है कि समस्त मानव जाति के जीवन का विधान शास्त्र प्रेम और अहिंसा तथा सदाचार का ही स्वीकृत किया जाय, आज के मानव को अन्तर्जगत और बाह्य जगत के समस्त अशिव, अभद्र और कलुष को धो डालने के लिय कटिबद्ध होना पड़ेगा।

संसार के अधिकतम धार्मिक भावों का उद्भव और विकास भारत में हुआ है। भारत की सर्वसभा संस्कृति भारत में विश्व-

धर्म सम्मेलन के योग्य तथा उपयुक्त वातावरण प्रदान करती है। नवीन विश्व की नवीन समस्याओं और सन्तापों को शमन करने के लिये विश्व राज्य को कल्याणप्रद-प्रेरणा माना गया है। किन्तु सार्वभौम विश्व राज्य एक सार्वभौम विश्व धर्म भाव की खोज किये बिना स्थापित नहीं हो सकता है।

विश्व का इतिहास धर्म के नाम पर रक्त-रंजित पृष्ठों से भरा है। किन्तु यह सब वर्ग-भेद, जातिभेद और धर्मभेद की दीवारें मानसिक संकीर्णता की उपज है। अनेक बार धर्म की ओट लेकर लोगों ने संहार और विनाश का तांडव नृत्य रचा है। पर शुद्ध धर्म विनाश पर विकास का निर्माण करता है।

भौतिकता घातक

हमारा विश्वास है कि निरन्तर बढ़ती हुई नास्तिकता मनुष्य के जीवन रस का शोषण कर देगी। भौतिकता नर को आत्म-घाती बना देगी और धर्म का दुराग्रह मनुष्य को मनुष्य का शत्रु बना देगा। इन सभी ज्वलंत प्रश्नों का उत्तर एक ही है— "धर्म के शुद्ध स्वरूप का अवतरण।"

एक भाव

हम चाहते हैं कि धार्मिक जगत का एक केन्द्र हो और संसार की समस्त धर्म धारायें उससे सम्बन्धित हों। वास्तविक धर्म के अपरिचय से अज्ञान और दुराग्रह को प्रोत्साहन मिला है। सर्व-धर्म सम्मेलन की योजना भेदभाव मिटाने का एक ही उपाय है। इस योजना द्वारा हम धार्मिक विचारों का अनेकान्त के माध्यम से आदान-प्रदान करेंगे। जिससे जगत को शुद्ध धर्म-भाव की उपलब्धि हो और विश्व-शान्ति तथा विश्व-धर्म की कल्पना साकार हो।

—:०:—

प्राणिरक्षा और अभयदान

मुनि जी ने संसार के सभी प्राणियों की रक्षा के लिये भिन्न भिन्न अवसरों पर अभियान चलाये हैं। मुनि जी का विश्वास है कि संसार का कोई भी प्राणी हो, उसकी उपयोगिता हम समझे किन्तु कोई भी इस भूतल पर जीव अनुपयोगी नहीं है। चाहे जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपुर हो या चाहे भुजपुर हो। जमीन पर रेंगकर चलने वाले या आकाश में उड़ने वाले सभी जीव आत्मा के नाते समान हैं, उपयोगी हैं और सृष्टि के संचालन में उन सब का योगदान हैं।

"परस्परोपग्रहो जीवानाम्' का सिद्धांत समूचे विश्व के कल्याण का आश्वासन है। अगर जगत् के सभी जीवों के प्रति शोषण या भक्षण की भावना हटाकर मानव उपकारी: बुद्धि या कृतज्ञता की भावना का प्रवाह बहने दें तो वसुधा को कुटुम्ब बनने में क्या देर लगे।

आज जो नि:श्वास छोड़ते हैं वह आप के लिये जहर है, पेड़, पौधों, पत्तों एवं घास के लिये जीवन है, भोजन है, सहारा है और पेड़-पौधे जो आक्सीजन छोड़ते हैं जो उनके लिए अनुपयोगी है वह आप के लिये प्राणाधार है।

जिन मक्खी-मच्छरों को आप अनुपयोगी मानते हैं वह ही नर-मादा वृक्षों में एक दूसरे के पराग पहुंचाकर फल आने के

लिये रास्ता साफ करते हैं। अगर मादा वृक्षों का सम्बन्ध नर वृक्षों से किसी तरह संभव ही न हो तो फल का उत्पादन सर्वथा वंद हो जाये।

सर्प, विच्छू, नील गाय, रीछ, सि आदि जितने बनैले जीव हैं इन सब का उपयोग है। संभव है कि हम उसे पूरी तरह आंक न सकें किन्तु एक दिन ऐसा आयेगा कि आप उन सबके योगदान का मूल्यांकन कर सकोगे।

जंगली जीवों का शिकार वंद करने, पशु-बध बन्द कराने, कुक्कर वकरे, गाय, भैंस आदि सभी जीवों की रक्षा के लिए मुनि जी प्रयास करते रहे हैं।

मध्यप्रदेश, वम्बई और महाराष्ट्र में मछली बचाने, कुत्तों की रक्षा करने, दिल्ली में कसाईखाने कतिपय दिनों के लिये वंद कराने और गोरक्षा के लिये राष्ट्रव्यापी आन्दोलन चलाते रहे हैं।

गुड़गांवा में चोगान माता पर सुअर-बध की क्रूर प्रथा है। गुड़गावां के लोगों की वड़ी इच्छा थी कि मुनि जी चाहें तो गुड़गांव के माथे पर लगा यह सुअर-वलि का कलंक मिट सकता है। और फिर मुनि जी की यह जन्म-भूमि है; उन्हें यहां आकर अवश्य प्रयास करना चाहिये।

गुड़गांव के सभी लोगों ने बड़ा आग्रह किया, मुनि जी ने मान लिया और सुअर बलि-विरोध में अभियान चालू कर दिया।

मुनि जी का अभियान निराला होता है। वह कभी भी धर्म स्थानों में बैठकर कोरा हिंसा-विरोध नहीं करते, अपितु जहां हिंसा हो रही हो वहीं से हिंसा-विरोधी कार्य संचालित करते हैं।

सुग्रर बलि- विरोधी आन्दोलन का सूत्रपात भी चोगान माता के प्रांगण में बैठकर ही किया। रातभर वहां ठहरे, चारों ओर सुग्रर-वधिकों का आवास और बीच में मुनि जी महाराज। रातभर बैठक, पंचायत चलती रही, सारा शहर मुनि जी की तरफ, बलि समर्थक हरिजन एक तरफ। रातों-रात हरिजनों के समर्थन में सैकड़ों हरिजन नेतागण एकत्रित हो गये। एक बहुत बड़ा हंगामा मच गया।

चारों ओर चर्चा, तर्कों-वितर्कों, की बौछारें। क्यों जी जैन मुनि अपना धर्म नहीं छोड़ सकते तो हमारे धर्म में ये हस्तक्षेप करने वाले कौन ?

दूसरा तेज स्वर करते हुये कहने लगा कि सुग्ररों को नहीं मारा गया तो क्या इनकी फौज बनाई जायेगी ?

तीसरा कहने लगा कि चैत्र और वैसाख में दो महीने रविवार से मंगलवार तक यह मेला लगता है, ३०-३५ हजार सुग्ररों के बच्चों की बलि दी जाती है, अगर ऐसा नहीं हुआ तो ये सुग्रर सारे देश के अन्न को खा जायेंगे।

अच्छा जी, अगर हम बलि बन्द कर दें तो हमारी देवी-पूजा का क्या होगा। 'जीव के बदले जीव बच्चों की रक्षा के लिये ही सुग्ररों की बलि ली जाती है। एक जीव की बलि देवी के लिये कर देने से हमारे जीव की रक्षा हो जाती है। यह तो हमारा सिद्धांत है और अगर बलि बन्द हो गई तो हमारे बच्चों की जान कौन बचायेगा।

ऐसी कितने कुतर्क उठे, आरोप लगे, मारने की धमकियां दीं। दिल्ली के २०-२२ सज्जन रात भर मुनि जी के साथ उन हरिजन-समूहों को समझाते रहे किन्तु वे हरिजन भाई टस से मस

न हुये । अंत मे आध्यात्मिक बल के सहारे ही विजय प्राप्त हुई ।

मुनि जी ने सब हरिजन बन्धुओं को ललकारते हुए कहा कि जोर से हिंसा बन्द करने में हमारा विश्वास नही रहे हों किन्तु भरोसा रखो, सारी रात जो बीत गई है, दिन के बारह बजे तक आप सब लोग अवश्य मान जाओगे ।

मुनि जी यह कहकर शहर के जैन स्थानक में चले आये और वे हरिजन बन्धु मुनि जी पर फौजदारी मुकदमा चालू करने के लिये कोर्ट जा पहुंचे ।

चाहते तो थे मुनि जी पर रात को दिल्ली के गुण्डों से पिटवाने का केस करना किन्तु जिलाधीश ने उन्हें बुलाकर समझाया कि मुनि जी हमारे देश की महान् विभूति है, राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद का मुनि जी की प्रशंसा एवं बलि-विरोध में लिखा हुआ उन्हें दिखाया गया । हरिजनों का मन बदल गया । सीधे मुनि जी के पास आकर चरणों में गिर गये, सरकारी कागज पर सभी हरिजनों ने लिखकर दे दिया कि हम आज से सुअर बलि बन्द करते हैं । बलि बन्द हो गई । किन्तु चोरी से अब भी होती है, व्यापक रूप से बलि अवरुद्ध हो गई, किन्तु, गुप्तरूप से अब भी होती है । बलि-प्रथा हटाने के लिये अभी और बलिदान करना होगा तभी इस कुप्रथा का अंत होगा ।

मांसाहार के विरूद्ध जैन मुनि की प्रेरणा—

"धर्म, परम्पराओं और मर्यादाओं के बन्धनों में ही आबद्ध नहीं है, किन्तु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हैं। और आहार में तो धर्म का आत्यधिक प्रभाव अपेक्षित है। अतः हमारा भोजन और भजन से धर्म से उत्प्रेरित होने चाहिये। भोजन हमें बल देता है और धर्म उस बल को विश्वहित के लिये अर्पण करनेकी श्रद्धा प्रदान करता है : आहार धर्म के लिये हो, और धर्म सेवा के लिये और सेवा का उद्देश्य परमार्थ हो जहां-जहां आशक्ति और स्वार्थ का दोष न रह जाये।' मुनि श्री सुशील कुमार जी ने जैन कांफ्रेंस भवन में आमंत्रित अमरीकन शाकाहरी और दिल्ली के शाकाहरी सम्मेलन के सदस्यों के समक्ष बोलते हुये कहा।

आहार के महत्व पर मुनि जी ने बोलते हुये कहा—(आहार मनुष्य की पहली आवश्यकता है। आवश्यकता की पूर्ति में धर्म बाधक नहीं बनना चाहता। अपितु उसका उद्देश्य सहयोगी ही बनना है। आहार का कितना ही क्यों न वैयक्तिक प्रश्न हो, किन्तु आहार का उत्पादन समाज के साथ जुड़ा हुआ है। जैसे किसी गरीब के मुख से कौर छीन कर खाना और किसी बच्चे से रोटी का टुकड़ा गीध और चीले की तरह झपट कर लूट लेना सामाजिक अन्याय है और मानवीय महानताओं के विरूद्ध उसी प्रकार किसी पशु का वध कर किसी का पेट काटकर अपनी अपनी देह की पुष्टि करना भी आध्यात्मिक पाप है। प्रत्येक पशु

अपनी जिन्दगी के मोह से उसी प्रकार भरपूर है जैसे आदमी अपनी जीने की इच्छा से। अतः अहिंसा और धर्म का उपदेश है कि पशुओं का सहयोग लो, कोटुम्बिक भावना के प्रसार में मनुष्य ही क्या पशुओं को भी स्थान दो, वे भी तुम्हारे परिवार के सदस्य बन सकते है। उन्हें मारो मत, उनकी सेवा का ऋण उन्हें मार कर मत चुकाओ।

मांस के विरुद्ध बोलते हुये उन्हेंने कहा—'मांस मौत की की खुराक है। वह मौत देकर ही तैयार होती है। अतः भोजन में आप मांस स्वीकार करते हैं तो इसका अर्थ हुआ कि आप जिस पशु का मांस खा रहें हैं तो आप उसकी अनन्त तृष्णाओं के विरुद्ध उसके जीवन का अस्तित्व तो मिटेगा नहीं, वैर शेष बच जायेगा, जो तुम्हें तुम्हारे समाज में विनाश और विध्वंश का खेल रचायेगा।

दिल्ली की ओर संकेत करते हुये मुनि जी ने कहा कि शिकायत है कि दिल्ली में पशु बध मांसाहार तथा अण्डों का भक्षण बहुत तेजी से बढ़ रहा है। निरामिष भोजन का मिलना दुर्लभ है, यह पतन की पराकाष्टा है। यह अमरीकन भाई आर्थिक और सामाजिक रूप से आपको निरामिष भोजन की ओर प्रेरित कर रहे हैं, आपको धन्यवाद देना चाहिये। भारत का विश्वमैत्री का संदेश मनुष्य तक सीमित नहीं अपितु प्राणियों तक भी है सबको अभय मिले।

ब्रह्मांड के विराट रूप का जैसा दर्शन धर्म से हो सकता है विज्ञान से नहीं

जैन मुनि सुशील कुमार

"क्या वैज्ञानिक युग धर्म शास्त्रों को चुनौती दे सकता है ?

इस गम्भीर प्रश्न का विश्लेषणात्मक एवं संश्लेषणात्मक करते हुये विश्वधर्म सम्मेलन के प्रेरक जैन मुनि श्री सुशील कुमार जी ने कहा कि बाह्य एवं भौतिक सत्य की खोज में प्रयत्नशील विज्ञान प्रयोगशाला की वस्तु है। वह बाह्य जगत के भौतिक सत्यों का उद्घाटन करता है और भौतिक सत्य विज्ञान की सीमाओं के विस्तार के साथ बदलते रहते है। विज्ञान के सत्य की कसौटी अनुसंधान शालाये प्रयोगशालाये परख नलियां मशीन और यन्त्र है। इसलिये भौतिक एवं वैज्ञानिकी सत्य मशीनी सत्य है, प्रयोगशालाओं का सत्य है।

विज्ञान के विपरीत आध्यात्मिक सत्य की कसौटी अन्तर्मन है जिसकी रहस्यमय प्रक्रियाओं की नाप खोज विज्ञान नहीं कर पाया है और न कर सकता है।

महामुनि सुशील कुमार जी ने अपने भक्तजनों से विज्ञान और धर्म के प्रति बौद्धिक दृष्टिकोण अपनाने पर जोर देते हुये कहा कि आलोचनाये जो सत्य की खोज में जिज्ञासाओं शान्त करने में सहायक होती है। दो प्रकार की होती है। एक तर्क मूलक एवं ध्वंसात्मक। दूसरी अनुभव मूलक, अनुभव मूलक

आलोचना के सहारे हमें जीवन के सत्य की खोज करनी चाहिये। जहां तक बाह्य भौतिक खोज की आवश्यकता है-जैसे रोटी कैसे पकाई जाती है, उसमें विज्ञान सहायक हो सकता है, पर विज्ञान अन्तरमन के भेद नहीं खोज सकता। आंसू आते हैं यह विज्ञान बता सकता है पर आंसू क्यों और कब आते हैं और उनके आने पर मनुष्य के भीतर भावों का उद्वेलन कैसा होता है उसकी परख विज्ञान नहीं कर सकता। मनुष्य क्यों मुस्कराता है, क्यों आंसू बहाता है, प्रियजन के मिलन पर मनुष्य कैसे आत्म विभोर हो उठता है आशा निराशा की लहरियों में मनुष्य के हावभावों में किस तरह की प्रक्रियायें सहज अभिव्यक्त होती है इसका उत्तर विज्ञान के पास नही है। बिल्ली जब अपने जबड़ों के बीच चूहों को दबोच लेती है तो वह छटपटा उठते है पर जब वह अपने बच्चों को उसी प्रकार उठा कर ले जाती है तो उन्हें कुछ नही होता......क्यों ? क्या इसका समाधान विज्ञान के पास है ? कुत्ता मालिक द्वारा प्रेम से दी गयी रोटी को अपनी पूंछ हिलाकर खाता है पर जब वह रोटी चुरा कर ले जाता है तो अपनी पूंछ दबा लेता है ऐसा क्यों ? क्या इस सहज वृत्ति के रहस्य की खोज विज्ञान कर सकता है ? अतः स्पष्ट है कि समस्त प्राणियों मे जो संवेदनायें हैं जो भाव उद्वेग है, सुखदेव की जो कल्पनायें है, मन के जो संकल्प विकल्प है उनके सत्य की खोज विज्ञान नही कर सकता-वह तो धर्म एव दर्शन द्वारा ही सकता है। स्पष्ट है कि सामाजिक मर्यादाओं का मूल्यांकन व्यक्तित्व के आचरण का मूल्यांकन, नैतिक मूल्यों का मूल्यांकन दर्शन शास्त्रो के विवेचन से ही हो सकता विज्ञान से नहीं। जानने की जिज्ञासा एक सहजवृत्ति है उसमें मनुष्य को सन्तोष

मिलता है, वह चिन्तन से, मनन से विचारों से ब्रह्माण्ड के रहस्य जानने की खोजने की कोशिश करता है। उसकी वाह्य खोज में विज्ञान सहायक हो सकता है पर जीवन के विराट रूप को समझने के लिये उसे धर्म एवं दर्शशास्त्रो की शरण जाना पड़ेगा। अब तक दर्शनशास्त्र से जो ज्ञान संकालित हुआ है वह अन्तर्मन के शाश्वत सत्यों को उजागर करता है उन सत्यों को अनुभव करने वाला प्राणी अपनी वाह्य इच्छाओं को निरोध कर बैठता है। विज्ञान भौतिक इच्छाओं को कढ़ावा देता है पर धर्म शास्त्र मान मन की इच्छाओं पर नियन्त्रण करने की दिव्य शक्ति प्रदान करता है। विज्ञान की शक्ति तामासिक शक्ति है जो वाह्य इच्छाओं के सागर में ज्वार पैदा कर देती है पर धर्म की शक्ति सात्विक शक्ति है जो इच्छाओं को शान्त कर जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये मन में त्याग एवं तपस्या की भावना उत्पन्न करती है उसी तपस्या से मन अपने कर्मो एवं पुन्यों से गमन करता है वह उनसे प्राप्त आध्यात्मिक शक्ति से न जाने कितने चन्द्रलोक और सूर्यलोक का दर्शन कर आता है। वह विज्ञान चक्षुओं से समस्त दृष्टि का विराट स्वरूप का दर्शन कर धन्य हो उठता है आत्मा-जीवात्मा के सारे भेद खोज लेता है। प्राणी मन के समस्त रहस्यों के सत्य को जान लेता है। उसकी वृति की कोई अभिव्यक्ति नही कर सकता वह तो अन्तर्यामी स्वरूप है जहां तक विज्ञान की पहुंच नहीं है। ऐसी स्थिति में विज्ञान कैसे चुनौती दे सकता है धर्म को।

धर्मो का मिलन

धर्म मृत्यु पर आत्मा की विजय का सन्देश वाहक है। धर्मो में भोग पर त्याग की आसुरी शक्तियों की विजय करवाई है।

धर्म का प्रसाद प्रेम और सहिष्णुता पर खड़ा है। आत्म समर्पण धर्म की पहली शर्त है धर्म ने मानव के विराट अन्त स्थल में सुप्त परमात्मा को जागृत किया है। धर्म ने आत्मा को परमात्मा पन का आत्म विश्वास दिया है और परमात्मा ने ही परमात्मा की अलौकिक ज्योति को निहार सकने का रहस्य उद्‌घाटित किया है। वट के बीज वट है, एक बीज के अगणित होने पर भी उनमें वही शक्ति है। शक्ति के विनिमय का सिद्धान्त अर्थात् शक्ति का विभाजन होने पर भी शक्ति है, वह अशक्ति नहीं हो सकती। ठीक इसीलिये धर्म प्राणी मात्र की आत्मा को दिव्य प्रभुमय ही देखता है। "अप्पामो परमप्पा" अर्थात भगवान महा वीर की वाणी और आत्मा ही परमात्मा है यह सब सुनहरा सिद्धान्त उसी परमधर्म के विश्वासी मानव को प्रदान किये गये है। प्रभुमय हुये बिना प्रभु का साक्षात्कार नहीं हो सकता। यही सारी सन्तों, साधकों, धार्मिकों और मस्त फकिरों की अमर वाणी रही है जिससे धर्म जैसा अमृत इस मानव लोक में निरन्तर बहता रहता है। यही एक ऐसा भावात्मक धर्मो का संगम है जहां संसार के सभी धर्म अपनी-अपनी एकता की गूंज से प्रतिध्वनित हो रहे हैं।

आत्मा ही गुरु

धर्म चाहता है कि मानव की और मानवीय संसार की असुन्दरता धो दी जाय और मानव अशक्तिहीन हो सके, वाणी और विचार का अतिक्रमण कर, मौन की भाषा में वाणी के नाथ को सुन सके। याद रखिये मौन ही आत्मा की भाषा का अविरोध प्रवाह है। उसका उद्‌गम प्रभु-साक्षात्कार से प्रकट होता है। प्रभु स्वरूप हुये बिना प्रभु को पाना असम्भव है। अपने स्वरूप

में लीन होने के पूर्व अपने स्वरूप का प्रेम होना आवश्यक है। अपने स्वरूप का प्रेम ही ईश्वर में प्रेम है। प्रभु भक्ति ही जप विकार के समान का एक उपाय है। सब दुवृत्तियों अनैतिकताओं से अपने को बचाने के सिवाय आनन्द भाव से प्रभु के प्रति आत्म समर्पण करने से श्रेष्ठ कोई मार्ग नहीं है। आत्मा ही सच्चा गुरु है। वही हमें प्रतिक्षण सत्य का साक्षात शिक्षण देता है जिससे मानव अन्तरमुखी हो सके, शान्ति प्राप्त कर सके, भेद से अभेद की ओर, अविद्या से ज्ञान की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमृत की ओर प्रमाण कर सके। यही आत्मार्थी की, धर्मात्मा की, सर्वोच्च ध्येय सिद्धी है जिसका शिक्षण सभी धर्मों ने किसी न किसी रूप में संसार को प्रदान किया है।

सभी धर्मों ने आत्म समर्पण से अहम भाव के नष्ट होने का विश्वास किया है। इसी से मानव का शोक और दुख पीड़ा और व्यथा, सभी कुछ नष्ट हो जाती है। यहीं से आत्मानुभूति का पहला अस्वाद प्राप्त होता है। और आत्मानुभूति की शक्ति ही संसार की सभी गुप्त शक्तियों से बढ़कर है। संकल्प, वृत, जप-तप, नमाज, उपासना और प्रार्थना सब धर्म उसी शक्ति के जागृत करने के उपकरण मात्र हैं। उद्देश्य तो स्वरूप का बोध ही है, बिना स्वरूप के समझे "मैं भी उपकार नहीं कर सकते। इसलिये संयम, दया, परोपकार, सरलता, दमन तथा क्षमा आदि दैवी शक्तियों का प्रकटी करण पहले अपने ही में करना पड़ता है। क्योंकि तुम्हारा ध्येय तुम्हारी विनम्रता में ही छुपा हुआ है। तुम्हारा कल्याण तुम्हारे ही चरित्र निर्माण में निर्मित है, तुम्हारा उत्थान और पतन तुम्हारी भावनाओं और आचरणों पर अवलम्बित है। तुम्ही अपने आपके विधाता हो। शुभ करो

शुभ हो जावेगा। तुम्हे अशुभ से शुभ की ओर तथा शुभ से शुद्ध की ओर प्रमाण करना है। यही तुम्हारा पथ क्रम है और इसी उदास वृत्ति को अपनाने के लिये सभी धर्मों का बल पूर्वक आग्रह है।

सत्य की महत्ता

यह मैं धर्म का अध्यात्म पक्ष कह गया हूं। सभी धर्मों ने लोक-कल्याण और लोक-हित को ही अपना एकमात्र उद्देश्य घोषित किया है। आवश्यकता है कि हम अनेकान्त की दृष्टि से अखण्ड सत्य का दर्शन करें। शुद्ध दृष्टि द्वारा सत्य को साक्षात्कार करें। विश्व के धर्म केवल उन्ही के लिये उपादेय और गह्य हो सकते हैं जिनकी दृष्टि सम्यक् है, विचार सम्यक हैं, आचार सम्यक हैं। मैं विश्वास करता हू कि सभी धर्म सापेक्ष्य से सच्चे हैं, उन्हें झूठा नहीं कहा जा सकता हैं, हीन नहीकहा जा सकता, वह किसी न किसी अपेक्षा से इसी परम सत्ता की ओर जाने के लिये आतुर हैं, जिसे धरम अनेकान्तात्मक परम सत्य कहा जाता है। गांधी जी ने कहा था कि धर्मान्धता और दिव्य दर्शन दोनों अलग-अलग रूप हैं, उनमें कोई मेल नही है धर्म की आत्मा को पहिचाने वालों आत्मा को पहिचानों, धर्म का साक्षात्कार करो।

मैं धर्म को ब्रह्म स्वरूप में एकता का दर्शन कर रहा हूं, क्या सन्ध्या, नमाज, प्रेयर, आत्मचिन्तन, उसी आत्म बोध को सिद्द नही कर रहे हैं माला, तस्वीह और रोजारी एक ही चीज के नाम नही हैं।

अरहन्त, ब्रह्म, रसूल, जरथुस्त्र, मसीह आदि शिक्षा देने वालों के नाम नहीं है क्या? क्या सभी धर्म पुण्य तथा पाप के फल भोगने के स्थान को नरक, जहन्नुम और पुण्य प्रद स्थान को

जन्नत, स्वर्ग तथा हैवन का नाम नहीं देते हैं ?

व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा, धर्मार्थ दान, मनुष्य मात्र तथा समस्त प्राणियों के प्रति की गई दया, सुजनता और सोहार्द की सभी धर्म क्या प्रशंसा नहीं करते हैं ?

यह तो मैं एक स्थूल नियमों से तुलना कर रहा हूं, नहीं तो सिवाय दृष्टि भेद के संसार के सभी धर्मों में आश्चर्य जनक एकता है। उस एकता को पाने के लिये समन्वय की बुद्धि, श्रद्धा का हृदय तथा प्रेम की आंखे चाहिये। धर्म के मानने वालों। विश्व के नागरिकों ! संसार के सभी धर्मों के प्रति उदार बनों और उनके प्रति आदर रखो। तिरस्कार की भावनाओं की तिलान्जलि दे दो। सहानुभूति के अमृत की वर्षा करो, तभी तुम धर्म का सौहार्द पा सकोगे।

अन्त में विश्व वद्य महावीर के शब्दों में "वस्तु सभाव धम्मों" कहकर मैं उस विराट सत्य की ओर आपका ध्यान खींचना चाहता हू। अमर सन्तानों सम्प्रदाय के स्थान पर स्वभाव को धर्म मानों और प्रेम का विस्तार को। मैं आशा करता हूं कि भारत भूमि पर ही सभी धर्मों का मिलन होगा जिससे समुचित विश्व की विलक्षण प्रेम का दिव्य-सन्देश दिया जा सके।

—:o:—

धर्म और दर्शन

धर्म यदि मानव जाति का आध्यात्मिक इतिहास है तो दर्शन तत्वज्ञान को समझने के लिये किये गये प्रयत्नों की परम्परा है।

धर्म आकुर अन्तर का उद्गार है तो दर्शन बौद्धिक प्रयास है हृदय मे श्रद्धा का और बुद्धि से तक का जन्म हुआ है।

धर्म अदम्य जिज्ञासा वृत्ति है किन्तु श्रद्धा से वह अभिलुप्त है। आत्मा का ज्ञान आत्मा साक्षात्कार से अनुभूत किया जा सकता है। विरह के क्षणों में भी आध्यात्मिक प्रेम उसी परम पुनीत अमृत रस का पान करता है जो उसे जगत की समस्त क्षुद्रताओं से पार कर देता है। कबीर जगत के चारों ओर अपने प्रभु की ही लाली का दर्शन किया करते हैं।

"लाली मेरे लाल की,
जित देख तित लाल।
लाली देखन मैं गयी,
हो गयी मैं भी लाल।"

प्रभु का मस्ताना आध्यात्मिक पुरुष चांद सितारों, धूप छांह, नदी किनारों से उसे थिरकती प्रेरणा को ग्रहण करता है जो प्रभु प्रीतम तक पहुंचाने में मादकता का काम देती है।

धार्मिक व्यक्ति विधि विधेय नियमों पर अटूट श्रद्धा की ज्योति लेकर चलता है क्योंकि उसे शीघ्र जीवनमुक्त होना होता है।

धर्म उच्चादर्श पर स्थिर सर्वोच्च आध्यात्मिक उत्कर्ष है। मानव उस शिखर जैसी महानता सागर जैसी गम्भीरता और व्यापक अनुभूति में इस प्रकार रमा करता है कि वह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के झमेलों से लोकेषणा और कामनाओं के लोक से दूर, प्रतिक्षण असीम आनन्द का आस्वाद लेता रहे। धर्मानुभवी मानव जगत की असीम शक्तियों और वैज्ञानिक जीवन के मूल्यों पर तथा इन्द्रिय सुख सुविधाओं से संतुष्ट नहीं हो सकता उसे तो असीम अखण्ड स्वयंम्भू और अव्यावाध सुख चाहिये। वह केवल स्थित प्रक्ष-वीतराम जैसे मध्यस्थ विकारजित संयमी पुरुषों को ही उपलव्ध हो सकता है। धार्मिक व्यक्ति उसी परम शुद्ध-वुद्ध चिन्त और आनन्द तत्व पर श्रद्धावान होता है।

दर्शन की समस्यायें उससे भिन्न थी। दर्शन धर्म की श्रद्ध मूलक दृष्टि पर इतना अधिक विश्वास नहीं रखता जितना तर्क और प्रमाण पर।

दर्शन में उत्कृष्ट और अटूट जिज्ञासा विज्ञान और वुद्धि के आलोक पर पैर रख कर चलती है। दर्शन के भी अनेक स्तर है। अनेक रूप है और अनेक परम्परायें हैं। १२०० के लगभग दर्शन के स्वरूप सुस्थिर हो चुके है। धर्म और दर्शन भारत के क्या विश्व के विचार जगत पर शासन करते रहे।

धर्म और दर्शन की परिभाषा

धर्म आत्म स्वभाव है तो आध्यात्मिक अनुभव जन्य तत्व-ज्ञान पर युक्तिपूर्वक प्रयत्न ही दर्शन है। यद्यपि पाश्चात्य जगत में विभिन्न विज्ञानों के योग अथवा वैज्ञानिक ज्ञान के एकीकरण को ही दर्शन वताया गया है ज्ञान और जिज्ञासा की दृष्टि से दर्शन शास्त्र की सार्वभौम विज्ञान भी कहा गया है। पाश्चात्य

विद्वान इसी एक मत पर विवादहीन रहे हैं कि दर्शन के लिये है। विश्व व्यवस्था जानना दार्शनिक जिज्ञासा है और ज्ञान का अर्थ ज्ञान ही है। भारतीय आलोचक इस परिभाषा को अपूर्ण मानते हैं। क्योंकि विज्ञान और दर्शन को एक नहीं कहा जा सकता। विज्ञान आवश्यकताओं की शोधकता है। दर्शन की प्रेरक शक्ति अदम्य जिज्ञासा प्रकृति अथवा पूर्णत्व की ओर बढ़ने की प्रबल उत्कंठा है। पहली प्रतिज्ञा से दर्शन विज्ञान की ओर जाता है। दूसरे विश्व निर्देशन से मोक्ष धर्म की ओर दर्शन के लिये न होकर जीवन के लिये हो, यही मुख्य धारणा है।

उद्देश्य

विश्व विवस्था को जान लेने मात्र से कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। कहा भी है—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः।
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः॥

जानने मात्र से धर्म में प्रवृत्ति और अधर्म में निवृत्ति वासना विरोध तथा आत्म संयम की प्राप्ति नहीं हो सकती। सुकरात, सांख्य की तरह ज्ञान को ही धर्म मानता था। सत्य ज्ञान का उद्देश्य रागद्वेष से ऊपर उठकर पूर्ण विवेक के मार्ग पर चलता है। क्योंकि घटना जगत और मूल्य जगत सभी मूल वियोग का अधिष्ठान आत्मा है। आत्म विकास ही दर्शन का उद्देश्य है। किन्तु पाश्चात्य संस्कृति व्यक्तित्व के पोषनार्थ बौद्धिक प्रयत्नों में ही जीवन महिमा देखती है। मेरा तो विश्वास है कि जीवन मुक्ति की धारणा ही धर्म और साधन के क्षेत्र में दर्शन की बड़ी देन है।

धर्म और दर्शन में साम्य

भारतीय धर्मों और दर्शनों का सबसे महत्वपूर्ण साम्य यही है कि दोनों ने सभी पुरुषार्थ मोक्ष सिद्धि, दुख विघान अर्थात पूर्णत्व की प्राप्त के लिये किये हैं। दर्शन धर्म के चरम अर्थो को आत्मसात करके मानव को दूर दृष्टि तथा अन्तर दृष्टि देता आया है।

पाश्चात्य दर्शन से भारतीय दर्शनों का यह विषय रहा है। यद्यपि प्लेटो ने अज्ञानी मानव का यह चित्रण बहुत ही करुणा-जनक रहा है—दुनिया के लोग निरे पशुओं के समान हैं, इनकी दृष्टि नीचे है और शरीर पृथ्वी पर झुके हुए हैं। वे खाते पीते और लुटाते हैं तथा सन्तानोत्पत्ति में लगे रहते हैं। विषय सुख के अत्यधिक प्रेम के कारण मानव व पशु अपने लोहे जैसे सींगों और खुरों से एक दूसरे पर प्रहार करते हैं और दुलत्तियां झाड़ते हैं। अपनी अशान्त तृष्णा के कारण एक दूसरे के प्राण लेते रहते हैं।

यह वर्ण भगवान महावीर बुद्ध तथा भगवताकार ने अपने शब्दों में इस प्रकार किया है—पुत्रस्योत्यदने दक्षा अदक्षा मुक्ति साधने। पंडितास्तु कलक्षेण रमन्ते महिषा वन ! फिर भी प्लेटो इन अज्ञात धर्मों मानवो को मुक्तिमार्ग नहीं दे पाया। वह अन्त तक ज्ञान को ही धर्म मानता रहा है।

भारतीय और पश्चिमी दर्शनों में साम्य

पूर्वी और पश्चिमी धर्मों और दर्शनों में केवल वैष्यम ही रहा हो, ऐसी बात नहीं, अपितु उनमें विलक्षण साम्य में भी रहा है। पर्व प्रथम साम्य दोनों की विचार पद्धति में है। व्यवहार और ...र्थ के भेद पर विश्व के समस्त दर्शन और धर्म ...

ने सोचते आये है । जैसे कि जैन धर्म में जिस जीव और पुदगल का द्वन्द युद्ध कहा गया, वैसा ही वैद्धिक धर्म में देव और असुर संग्रामे तथा बौद्ध धर्म में बुद्ध और मार, फारसी में अहुरमजदा और अहिमाम इस्लाम में अल्लाह और शैतान, ईसाईयों मे गाड (ईश्वर और शैतान का रूप मानव और अंतिमानु, का रूप प्राप्त होता है । सभी दर्शनों में व्यवहार और प्रमार्थ का भेद इसी प्रकार मिलता है । जैसा कि जैन दर्शन के पर्याय और द्रव्य बौद्धों के शून्यवाद में संस्कृति और प्रमार्थ तथा विज्ञानावाद में परतन्त्र और परिनिष्पन्न, पायेनाइडीज में व्यवहार और सत्य, हैटेक्लाइटस में अवनत और उन्नत प्लेटों में इन्द्रियानुभूमि और विज्ञान अथवा छाया और प्रकाश स्पिनोजा में अनित्य और नित्य काण्ट में व्यवहार और प्रमार्थ, हेगल में श्रम और तत्व तथा ब्रेडले में व्यवहार और प्रमार्थ । परम तत्व के विषय में ईश्वर,' जीव, प्रकृति, द्रव्यगुण और प्रमाव के विषय में दार्शनिक किसी न किसी रूप में परस्पर सहमत ही रहे हैं ।

धर्म और दर्शन का विस्तार

धर्म मानव जाति पर पिछले पांच हजार वर्षों से एक छत्र राज्य करता आया है । और दर्शन की आयु अभि धर्म की अपेक्षा कम है । तीन हजार वर्ष के मध्य में दर्शन का वास्तविक प्रादुर्भाव हुआ है । ग्रीम के तत्वचितक दर्शन जगत में सर्वप्रथम रहे है । वे ईसा मे कुछ शताब्दी पहले हुये थे । थैलीज से लेकर जनक्सिमअर तक ग्रीस तत्ववेत्ता प्राकृतिक भूड़ा तत्वों पर ही अपना विश्वास टिकाते हैं । थैलीज विश्व का परम तत्व जल को था । और एनेक्सिमेण्डार वायू को परम तत्व स्वीकार करते थे । पाइथागोरस में दर्शन की भूमिकायें स्वरूप में स्थित

हुई और उन्होंने जगत और जीव का सुन्दर विश्लेषण किया : ऐतिहासिकों की शोध है कि वे ग्रीस से भारत में आये थे। और भगवान पार्श्वनाथ की सम्प्रदाय के साधकों के पास कुछ वर्ष रहे थे। दिगम्बर पदावली तो उन्हें पिटितास्त्रव के नाम से जैन मुनि मानते हैं, इसके सत्यासत्य का निर्णय करना ऐतिहासिकों का काम है। संघ व्यवस्था, साधु शिक्षा का उपक्रम, निरमित्र भोजी जीवन त्याग, तपस्या तथा संयम पर अटूट विश्वास कर्म-वाद, शुभाशुभ कर्मफल, ज्ञान दर्शन और चरित्र का प्रेम तथा अनेकान्त पद्धति में सब उन्हें जैन धर्म से प्रभावित होने से अछूता नहीं रखती।

डा० चन्द्रधर शर्मा ने पाश्चात्य दर्शन में और डा० सर्व-पल्ली राधा कृष्णन ने ही नीटिंग आफ ही रिलीजन्स में इस की ओर संकेत भी किया गया है।

पाइथागोरस की तटस्थ दार्शनिकता जैन धर्म के केवल ज्ञानी का ही नया संस्करण हैं। स्पिनोजा का दर्शन, वर्कले की चिन्तन पद्धति हेगल का निरपेक्ष विज्ञान वाद भारतीय दर्शन के साथ विलक्षण समन्वय रखते हैं। आज विश्व और धर्म का क्षेत्र अति विस्तृत है क्योंकि भारतीयों की अपेक्षा योरुप में दर्शन और दार्शनिकों का सम्मान अधिक रहा है। धर्म का वर्गीकरण आप विश्व धर्म के निबन्ध में देख सकते हैं। दर्शन के वर्गीकरण में में दो विभाग करने पड़ेगे—भारतीय दर्शन और पाश्चात्य दर्शन

जैन धर्म का अनेकान्तवाद

पाश्चात्य तर्क विज्ञान ने परामर्शों को साधारणतया भेदों विभक्त किया है। विधायक और प्रतिशोधक किन्तु जैन दर्शन में सात प्रकार के भेद बताये गये हैं। जैन तार्किकों का विश्वास है कि वस्तु अनन्त धर्मात्मक है। उसे एक ही शब्द अथवा दृष्टि से सम्पूर्णतया आंका नहीं जा सकता। एक हाथी और सात अन्धों का उदाहरण इससे पूर्णतया घटित होता है। सात अन्धों का पृथक-२ रूप से ज्ञान हाथी का आंशिक ज्ञान है उसे न तो सर्वथा असत्य और न पूर्णतया सत्य माना जा सकता है। अतः ऐसी विकट स्थिति में जैन दर्शन एक विशिष्ठ पद्धति का अवलम्बन लेता है जिसे स्याद्वाद कहते है। स्यात् शब्द का सम्बन्ध सत्य को अपेक्षित प्रकट करता है। स्याद्-अस्ति और स्याद्-नास्ति दोनों ही विधान आत्मक तथा प्रतिरोधात्मक आपेक्षिक सत्यो का समीकरण करते हैं।

जैसे कि घर के विषय में ही जनदर्शन सात दृष्टियों प्रयुक्त करेगा। घर है, घर नहीं, है भी और नहीं भी। यहां किन्हीं अपेक्षाओं से घर का विश्लेषण किया गया है। क्योंकि घर किसी अपेक्षा से है और किसी अन्य की अपेक्षा से नहीं है। इसका गम्भीर विश्लेषण पृथक देखना चाहिये। कहने का आशय है कि इसी दृष्टि को संसार के अन्य दार्शनिको ने भी स्थान दिया है जैसे हैरेक्लाइट ने भी इसे उदाहरणपूर्वक समझाया है

प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है जिसमें नित्यता, और क्षणि-कता दोनों है उसका सापेक्ष होना आवश्यक है। जैसे कि समुद्र का पानी मछली के लिये मीठा और मनुष्य के लिये खारा होता है। हम है भी, नहीं भी हैं, यह भी परस्पर सापेक्ष है। कहने का आशय यह है कि पाइथागोरस और हेरेक्लाइटस के सर्वभौम विज्ञान से लेकर अन्तिम दार्शनिक हेगल के रिपेक्ष विज्ञान वाद में हमें अनेकान्त दर्शन होते हैं। थोरी आफ रिलेटीविटी का आज संसार पर प्रभाव है। और इसकी मूल आत्मा और प्रेगमेटिज़म अथवा व्यवहारवाद का मूल स्थान अनेकान्तवाद में है।

अनेकान्त समन्वय और साहिष्णुता का सिद्धान्त है। वैचा-रिक पद्धतियों का तो समीकरण होता ही है किन्तु व्यवहारिक जगत की विचित्रताओं का भी समावेश हो जाता हैं। एक ही मनुष्य पिता, पुत्र, भाई ससुर, मित्र, राजा, प्रजा स्वामी, दास आदि सब कुछ विभिन्नताओं का अविरोध माध्यम अनेकान्त का ही फल है। मानव व्यवहार में घर में अनेकान्त को स्वीकार किया हैं। किन्तु दर्शन तथा विचारधारा जगत में नहीं किया अनेकान्ततिकता संघर्ष कारण हैं। और अनेकान्त प्रेम समन्वय तथा विरोध में अविरोध अनवेशषण का सुन्दर मार्ग है।

महासमन्वय की आवश्यकता

धर्म और दर्शन के समन्वय पर बेकन ने महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं। बेकन दर्शन को धर्म की दास्ता से विमुख रखना चाहते थे इसलिये उन्होंने कहा है कि दर्शन अभी तक जनता की आशा पूरी नहीं कर पाया है। उसमें भी अन्धविश्वास, असहिष्णुता और पारस्परिक विवाद अधिक बढ़ गया है। सर्व-प्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि धर्म और दर्शन के क्षेत्र

स्वतन्त्र और भिन्न हैं। दर्शन का आधार इन्द्रिय विज्ञान, अगमनात्मक तर्क, और धर्म का आधार है अतिन्द्रिय विज्ञान और श्रद्धा। दर्शन का लक्ष्य मानव समाज का कल्याण हैं। वह जीवन के लिए है सामाजिक जीवन की उन्नति और विकास के लिये है दर्शन धर्म का वाहन बनकर अब नहीं चल सकता है। डा० चन्द्रहार शर्मा पाश्चात्य दर्शन—

हेंगल ने अपने विचार अलग ढंग से प्रस्तुत किये हैं वह कहता है कि धर्म का स्थान कला के ऊपर है। कलात्मक अनुभूति का सर्वोच्च रूप धार्मिक अनुभूति है।

धर्म के ऊपर दर्शन का स्थान है। धर्म रूढ़िवाद से ग्रस्त हो जाता है और दर्शन मे चेतना के स्वातन्त्र्य विकास के लिये पूर्ण अवकाश रहता है किन्तु अन्त में हेगल महासमन्वय की भूमिका भी स्वयं तैयार करता है कि विज्ञान की प्रगति रिक्तसत् मे प्रारम्भ होकर असत्य में होती हुई उसे भी अपने साथ लेती हुई सद्-असत्य मे प्रवृत हो जाती है और सद्सत्य विलक्षणपूर्ण सत्य की ओर उन्मुख रहती है। इसी प्रकार अभेद की सिद्धि होती है। वास्तव में समन्वय की साधना भी इसी पद्धति पर आवेशपूर्ण तथा दोषग्रस्त है। क्योंकि वेकन ने दर्शन को धर्म से विमुक्ति दिलाने का प्रयास तो किया है, किन्तु वह मानव जाति के लिये अपनाना हानिकारक रहा हैं। पहले तो दर्शन धर्म को साथ था किन्तु अब तो वह भौतिक विज्ञान का दास बन गया पहले तो दर्शन परमार्थ से बधा था अब वह व्यवहार की शृंखला में आबध्द हो गया। अब दर्शन का लक्ष्य आध्यात्मिक ज्ञान और आनन्द बन गया है। वह दर्शन के हितकर नहीं हुआ। हेगल ने धर्म में कल्पना का और श्रद्धा का प्राधन्य तो कह दिया किन्तु इससे

लगता है कि उसने धर्मों की कोई कपोल कल्पित पुस्तक पढ़ ली होगी। यदि उसने द्रव्य व्यवस्था, तत्वज्ञान, गुणस्थान क्रम तथा आत्मा और पुदगल का सम्बन्ध पढ़ा होता तो सम्भव है उसकी यह कल्पना निर्मल हो जाती धर्म और दर्शन का एक ही लक्ष्य है चाहे उसे सत्य की खोज कहो अथवा आत्मस्वभाव का विकास कहो और मुक्ति प्राप्ति कहो, यह सब आनुशंगिक ही है। दर्शन धर्म से हीन हो गया तो ऐसा न हो कि देकार्ल की तरह मानव टूटते हुये यन्त्र की खड़खड़ाहट और मुमूर्प पशु की चित्तकार कोई अन्तर न हो, पशुओं में चेतना ही स्वीकार न करो वहां तो स्पीनोंजा के यह शब्द अत्यन्त मार्मिक है—राग द्वेप शून्य होकर तटस्थ भाग से ईश्वरीय अनुभूति करना, सब में प्रभु की और प्रभु के ज्ञान में सब को देखना यही परमात्मीय प्रेम पर निर्भर है। कहते हैं कि स्पीनोजा पर हर समय प्रेमी उन्माद छाया रहता था इसीलिये वह आलौकिक शक्तियों के स्वामी थे। मेरा विश्वास है कि धर्म और दर्शन को पृथक रखने का आग्रह इसलिये उत्पन्न हुआ है कि पाश्चात्य दार्शनिकों ने धर्म की अपेक्षा रिलीजन को माना हैं। रीलीजन और धर्म के अर्थ में बहुत बड़ा अन्तर है, दोनों एकार्थिक नहीं है। रीलजन आदर्शोन्मुकता की और प्रधानता से देखता है और आर्दश में पारलौकिक श्रद्धा तथा ईश्वरीय उपासना का अधिक महत्व रहता है। किन्तु धर्म को धारण करने से है धर्म का विकास आत्म स्वभाव रूप में होता है। भारतवर्ष में नीति शास्त्र, समाजशास्त्र, विज्ञान सौन्दर्य, मनोविज्ञान, साहित्यकला आयुर्वेद आदि सभी सामाजिक विषयों का विकास धर्म के अन्तर्गत ही हुआ है। धर्म इनमें साधक हुआ बाधक नहीं। धर्म की आवश्यकता संसार की शान्ति और मानव कल्याण

के लिये ही नहीं, अपितु वैज्ञानिक विकास तथा बुद्धि विकास के लिये भी आवश्यक हैं। भारत में धर्म के आदर्श की बौद्धिक पूर्ति दर्शन से हुई है। दर्शन ने धर्म के क्षेत्र का बुद्धि संगत परिष्कार किया है। यहां पर दर्शन और श्रम दोनों ने मिलकर जीवन का लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार अंतिममोक्षानन्द ही माना है। यही कारण है कि भारतीय जनमानवता विघाती और सुख-लम्पटि कभी नहीं हो पाया। माना कि योरुपीय दर्शन का ध्येय विश्व की व्याख्या अथवा ऐसे तत्वों की खोज करना है जो विश्व विविधता के कारण को प्रकट करें। भारतीय दर्शन का लक्ष्य तत्वानुसंधान और पूर्णत्व की ओर प्रयास करना है। चीनी दर्शन स्पष्टतः इहलौकिक सुख सम्पन्नता ही अपना मानता है किन्तु मानवता और लोक कल्याण की इच्छा को जब तक जगत के दार्शनिक अपना ध्येय मानते रहेंगे तब तक धर्म और दर्शन पृथक नही हो सकते।

इसीलिये आज एक मौलिक दर्शन की सर्वाधिक आवश्यकता है जो धर्म और दर्शन का महासमन्वय कर सके और जीवन के इन दो अमूल्य साधनों का उचित मूल्यांकन कर सकें।

धर्म वह नौका है जो भवसागर से पार कर देती है और दर्शन वह अमरप्रदीप है जो मुक्ति के मार्ग को प्रकाशित कर देता है।

—:०:—

विदेशी में विश्वधर्म सम्मेलन के उद्देश्यों का स्वागत—

विश्वधर्म सम्मेलन के उद्देश्यों का संसार के समाचार पत्रों में व्यापक स्वागत किया गया है अनेक पत्रों ने अहिंसक समाज की स्थापना के लिये इस सम्मेलन के उद्देश्य का हार्दिक समर्थन किया है। इथोपिया के प्रसिद्ध समाचार पत्र "दीवायस आफ इथोपिया" इथोपिया ने लिखा है कि अहिंसक समाज की स्थापना के लिये इस प्रयत्न का स्वागत करता है। जिसके द्वारा से संसार के राष्ट्रों के मनुष्यों में पारस्परिक सम्बन्ध अहिंसक जीवन तथा प्रेम एवं सम्भावना पर आधारित होंगे।

घृणा अथवा शोषण पर नहीं।

पत्र ने लिखा है कि "अहिंसक समाज का तात्पर्य उस समाज से है यहां व्यक्ति व्यक्ति, राष्ट्र राष्ट्र के बीच के सम्बन्ध घृणा और शोषण पर आधारित न होकर प्रेम -और सद्भावना पर आधारित होंगे।"

"संयुक्त राष्ट्र संघीय निःशास्त्रीयकरण सम्मेलन में निराशा दिखाई पड़ती है, बड़े राष्ट्रों की शास्त्रीकरण की होड़ जिसके अन्तर्गत शत्रास्त्र जैसे घोर घातक हथियारों का आणविक तेजी से निर्माण, परीक्षण, और संग्रह हो रहा है। इन्हें देखते हुए सम्भव है कि अहिंसक वह कार्य करने में सफल हो जाये जिसमें धर्म निरपेक्ष नेताओं को अब तक असफलता ही मिली है।"

"सार्वजनिक नेता जनता की कृपा पर आश्रित होते हैं। यदि हमारे धार्मिक नेता जनता में प्रतिरोध और वर्तमान परिस्थिति के प्रति आवश्यक भावना जाग्रत कर सकें तो शान्तिपूर्ण तरीकों से वह कार्य कर लेंगे, जो हमारे नेता पद से नहीं हो सके हैं।"

"युद्ध के लिये आणविक अनुसंधान के क्षेत्र में आज जो कुछ हो रहा है उसने हमारे आस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया है। मानव जाति बिना किसी युद्ध घोषणा के ही विनष्ट की जा सकती।"

"इस खतरे के उन्मूलन के लिये जनता आध्यामिक नेतृत्व की ओर देख रही है। ये आशा अहिंसक समाज से है।"

—o—

अध्यात्मिक उन्नति द्वारा ही जगत में शान्ति सम्भव

विश्व धर्म सम्मेलन में मुनि सुशील कुमार जी द्वारा अहिंसा शोधपीठ की स्थापना पर बल:—

मुनि सुशील कुमार जी ने धर्म को किसी के मार्ग में बांध न होने की चर्चा करते हुए कहा कि जहां हम और कार्य करें वहां धर्म के साथ-२ नवनिर्माण की योजनाओं में योग दें। आपने आगे कहा कि—दुनिया में भौतिक आधार पर खड़े किये संगठन राष्ट्र व्यापि और विश्वव्यापी बनते जा रहे हैं। सत्ता, सम्पत्ति और संकीर्ण दृष्टिकोणों को सामने रखकर चलने वाले राज्याधिकारी भी सार्वभौम राज्य की आवश्यकता अनुभव कर रहे हैं। धीरे-धीरे विश्व एकीकरण की ओर अग्रसर हो रहा है। ऐसे समय में आध्यात्मिक शक्तियों को एकत्र होकर प्रजा के जीवन निर्माण के लिए विश्व राज्य की आधार शिला धर्म के आधार पर स्थापित करने की आवश्कयता है।

हजारों वर्ष पहले इसी भारत भूमि पर जैन सम्राट खारवेल, बौद्ध सम्राट अशोक, हर्षवर्धन तथा वैदिक सम्राट समुन्द्रगुप्त और महान अकबर के धर्म सम्मेलन एवं धर्म संगीतिकायें हो चुकी हैं। मेरे मन में सम्मेलन की प्रेरण जगना तो स्वभाविक ही हो हां, भारत जैसे देश में रहकर धर्म सम्मेलन जैसी पवित्र विचार धारा का उदय ना होना ही अस्वभाविक लगता है। वर्ण, जाति, प्रान्त तथा भाषा सम्बन्धित संकीर्णता प्रेरित विरोध तथा वर्ग संघर्ष का यहां उत्पन्न होना इन्सात की करामात है। किन्तु अहिंसा, सत्याग्रह, भू-दान और ग्रामदान की आवाज उठाना तो हमारी परम्परा ही है।

मुझे शंका है कि भारत में हो रहे विश्व सम्मेलन के अवसर पर भारत का गुणगान अखर सकता है। किन्तु मैं मानता हूं कि हम जो कुछ हैं आपके सामने हैं। और जो कुछ आज तक नहीं थे वे आज आप को पाकर बन गये हैं।

आज हम सब विश्व के नागरिक अहिंसा के आधार पर विश्व शान्ति में धर्म की रोशनी डालते चले हैं। संसार को शाश्वत् शान्ति प्राप्त हो और हम सब के मानस में अखण्ड सत्य की ज्योति जग सके। यही हमारी एक मात्र कामना है।

अहिंसा शोधपीठ की कल्पना—

इसी उद्देश्य से व्यक्तिगत कौमेमिक्वक तथा सामाजिक जीवन में व्यापक प्रभाव डालने के लिए अहिंसा शोधपीठ की एक योजना हमारे सामने उद्‌भुत हो रही है।। शोधपीठ का कार्य क्षेत्र सीमित नहीं होना चाहिए। उसे यह पता लगाना चाहिए कि जीवन की व्यक्तिगत और सामाजिक समस्याओं का अहिंसा के द्वारा किस प्रकार समाधान हो सकता है? उसे यह भी देखना होगा कि विभिन्न धर्मों ने अहिंसा को क्या स्थान तथा क्या महत्व दिया है? वह अहिंसात्मक तरीकों की व्यवस्थित शिक्षा देगी।

किन्तु सबसे बड़ा कार्य जो हमारे सामने है वह यह है कि हम पारस्परिक वैमनस्य की आग से झुलस रहे जगत के मानस को अहिंस का अमृत दे सकें, युद्ध की वाणी को शान्ति कर स्वर दे सकें, भौतिक विज्ञान कोमानव जाति का सेवक बना सके। और सामाजिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को अहिंसा के आधार पर स्थापित कर सकें, जिससे जगत में ऊंच-नीच की भावना का और वर्ग संघर्ष का अंत हो सके। यही युग की पुकार है और यही धार्मिकों का सबसे बड़ा कर्तव्य है।

जगत के शांतिवादी मोर्चे के लिये धर्म जरूरी

विश्व शान्ति, विश्व वन्धुत्व, अहिंसा मूलक, नव समाज रचना तथा नैतिक जागरण का प्रसार रखा गया है।

आज अणु, उद्‌जन तथा राकेट के जीवन में जगत जी रहा है। अमरता की खोज में चलने वाला संसार आम शीत युद्ध प्रतिस्पर्द्धा, तथा प्रतिहिंसा की ज्वाला में जल रहा है और भौतिक था वैज्ञानिक वल से धीरे-२ सर्वनाश की ओर वढ़ा जा रहा है।

ज्योति की चमक

विस्व शान्ति और सार्वभौम राज्य आज स्वप्न बनते जो रहे हैं, कोटि,कोटि वर्षो का संचित अनुभव के पारस्परिक प्रतिनाश में नष्ट हो जाने का भय उद्‌वुध हो रह है। आखिर हम किधर जा रहे हैं? राजनीति तथा विज्ञान आज मानवता को रक्षसीयन की ओर ले जा रहे हैं। इनके सिवाय एक और भी मार्ग है, और वह है आध्यात्मिकता का।

जनतन्त्र युग में अहिंसा

आज जनतन्त्र का युग है, सच्चे जनतन्त्र का उदय मनुष्य की असीम नैतिकता शक्ति से ही हो सकता है, क्योंकि हिंसक वैज्ञानिक शक्ति मनुष्य मात्र के वीच में समानता और सह-आस्तित्व के सिद्धान्त को अपमानित करती है। राज्य की उद्दाम शक्ति का हिंसा के कारण निरंकुशता की ओर अभिमान होता

है। राज्य की केन्द्रित और अमर्यादित शक्ति मानवता के लिये कब अभिशाप बन जाये यह संदेह ही बना रहता है। जगत की समस्त समस्याओं का एकमात्र स्थायी हल अहिंसक दृष्टि से नव समाज रचना ही है।

युद्ध और शान्ति

युद्ध से मानव यदि शांन्ति की ओर चलना चाहता है तो उसे तीन बुराइयों से बचना होगा—नास्तिकता, भौतिकता, और हिंसा।

अशान्ति और युद्ध के आजतक केवल तीन मूल कारण रहे हैं, पेट की भूंख, मन की भूख तथा आत्मा का असन्तोष।

अहिंसा इन तीनों ही समस्याओं का अपने रूपों में समाधान करती है—अपरिग्रहा अनेकान्त और संयम के द्वारा।

धर्म सम्मेलन भारत के लिये नया नहीं है। सम्राट अशोक, हर्षवर्धन, समुद्रगुप्त तथा महान अकबर ने इस प्रकार के विराट आयोजन पहले भी किये है और आज तो पिछले २०० वर्षों से योरोपियन राष्ट्रों में धर्म सम्मेलनों का तांता सा लगा रहा है, किन्तु धर्म सम्मेलन अपने मुख्य उद्देश्य में अभी तक सफल नहीं हो पाये। सम्भव है एक धर्म की विजय और अन्य धर्मों का विनाश, जैसी भावना उन सम्मेलनों में काम करती रही हो। हम धर्म सम्मेलनों द्वारा मानव जाति की सुरक्षा, सभ्यता, संस्कृति विकास का कार्य जिन धार्मिक तथा नैतिक तत्वों द्वारा हो सकता है, उनकी खोज, शिक्षण और प्रसार करना चाहते हैं।

कार्य का प्रारम्भ

धर्म सम्मेलन को हम भूभौतिकी वर्ष की तरह केवल अनुभव और प्रयोग दर्शन का रंगमंच कहेंगे। हमारा कार्य सम्मेलन से

समाप्त नहीं होता है। हमारी सबसे बड़ी इच्छा तो यह है कि समस्त संसार की शिक्षा और संस्कार निर्माण का व्यवस्थित शिक्षण केन्द्र खुलें। मानव समाज को अहिंसा, सत्य तथा आध्यात्मिकता का क्रमिक शिक्षण दिया जाये।

विश्व प्रेम की भूमिका

आर्थिक उन्नति के लिये तथा औद्योगिक विकास के लिये जिस प्रकार आज संसार में शिक्षा दी जा रही है, उससे मनुष्य औद्योगिक समृद्ध तो हो जायेगा किन्तु मानवता उसमें जागृत न होगी। हम मानव जाति का ध्यान मानवता के संस्कार निर्माण की ओर खींचना चाहते हैं। नैतिक बल और आध्यात्मिक विश्वास की ओर मनुष्य जाति को ले चलना चाहते हैं। यही धर्म का सबसे बड़ा सन्देश और अहिंसा की घोषणा है। भारतवर्ष में अहिंसा—विद्यापीठ कायम हो और संसार के समस्त भूभाग पर अहिंसा और प्रेम, सत्य और सदाचार के शिक्षण केन्द्र खुले जिसमें मनुष्य-मनुष्य राष्ट्र के मध्य बढ़ती हुई प्रतिहिंसा और असहिष्णुता का शमन हो। आत्मदेव से हमें प्रकाश मिले और विश्व धर्म सम्मेलन द्वारा विश्व राज्य की स्थापना से पहले विश्व प्रेम की भूमिका का हम निर्माण कर सके यहीं हमारी आन्तरिक इच्छा है।

—:o:—

भाइयों और बहनों !

अभी मुनि श्री जी ने आपको लक्ष्मी और पैसे के सम्बन्ध में बताया। मनुष्य ने पैसे को एक मध्य बिन्दु बनाया। यहां मनुष्य एक भूल कर गया।

प्राचीन काल से मनुष्य को वस्तु विनिमय के लिये किसी माध्यम की आवश्यकता थी। उसने धातु के सिक्के और इस युग में उसके साथ-साथ क्रेडिट और प्रामिसरी नोट को माध्यम बनाया परन्तु परिणाम यह हुआ कि मनुष्य का जो माध्यम था—वही उसका शासक बन बैठा।

बनाया था बुत, भगवान बन बैठा

आपके पेट भरने से लगाकर जीवन निर्वाह तक वस्तु की आवश्यकता है। पेट भरना और जीवन निर्वाह करने में वस्तु ही काम देती है। सिक्के आज तक किसी ने नहीं खाये।

यह तो निर्विवाद है कि प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक वस्तु का उत्पा-

दन नहीं कर सकता। न वह अपनी निर्मित सभी वस्तुओं का उपयोग या उपभोग ही कर सकता है। इसीलिये यह आवश्यक हुआ कि वह अपने उत्पादन को किसी उपभोक्ता तक पहुंचा दे। उपभोक्ता के पास भी कोई वस्तु उसकी आवश्यकता से अधिक थी। आरम्भिक काल में वस्तु से ही वस्तु का विनिमय चलता रहा। परन्तु कोई-कोई समय ऐसा भी हो सकता है कि विनिमय में प्राप्त वस्तु की किसी एक को आवश्यकता नहीं हैं। ऐसे समय में विनिमय का माध्यम सिक्का निश्चित किया गया और वह विनिमय साध्य सिक्का मानलिया गया। परिणाम स्वरूप वस्तुओं का आदान-प्रदान बहुत सरल हो गया।

इसके उपरांत भी एक उत्पादक अपने उत्पाद्य को रोकने या कोई व्यापारी खरीद कर रोकले तो समाज व्यवस्था में बड़ी मुसीबत खड़ी हो सकती है। इसलिये मुक्त आदान-प्रदान आवश्यक हुआ और जहां इसमें स्वार्थ ने घेरा डाला वहां शासन को उसमें हस्तक्षेप करना पड़ा जिसका अन्तिम सूत्र था—कन्ट्रोल और राशनिंग द्वारा वितरण व्यवस्था।

वस्तु और पैसे का उपयोग करिये उपभोग नही। आप उसके शासक बनिये दास नहीं।

भूख नहीं है। फिर भी भैंस की तरह दिन भर चर रहे हैं। भैंस का पेट भर जाय तो खाना बन्द कर देती है। आपके लिये भोजन है। आप भोजन के लिये नहीं।

एक बार आदि काल में मनुष्य ने भगवान से प्रार्थना की। हे भगवान हम बहुत दुखी हैं। हमारे दुःख दूर करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। हम जमीन पर रहते है। अनेक आधि व्याधि सताती हैं। नाना प्रकार की बीमारियाँ आ घेरती हैं। चिन्ता, भय और

शोक से व्याकुल हैं। भगवान ! कृपा करके ऐसी दया दीजिये कि ग्रानन्द ही ग्रानन्द हो जाये। भविष्य हमारे भयताप मिट जायं। हम ग्रानन्द-पूर्वक तुम्हारे गुण-गान करें ग्रौर चैन की वंसी बजावें। भगवान दया करो, दया करो।

भगवान ने मनुष्य की बातें सुनी ग्रौर कहा इन्सान मेरी शकल सूरत का है। यह जमी का खुदा है। इसकी मनोकामना पूर्ण होना जरूरी है।

भगवान ने ४ पुड़ियां बांध दी ग्रौर कह दिया ऐ इन्सान ऐ, मनुष्य। लेजा ये चार पुड़िया। इनमें से ये दो ग्रन्दर खा लेना ग्रौर ये दो शरीर के ऊपर लगा लेना। तेरे सब दुःख दूर हो जायेंगे। भय ताप मिट जायेंगे। लेकिन सावधान, उलटा मत कर बैठना वरना जन्म जन्मांतर तक तुम ग्रौर तुम्हारी भावी सन्तति को लेने के देने पड़ जायेंगे। जो दवा जितनी ग्रधिक लाभकारी होती है—विपरीत क्रिया से वह उतनी ही भयकर हो जाती है।

ग्रादमी बड़ा उपेक्षित होता है। पुड़िया लेकर ग्राया ग्रौर रास्ते में नींद ग्राने से सो गया। नींद में किसी वस्तु का ध्यान रहना सम्भव नहीं। ग्रादमी जगा। पुड़िया उलट-पुलट हो गई। भेद रेखा मिट गई। खाने की पुड़िया लगायी ग्रौर लगाने की पुड़िया खा गया। परिणाम वही हुग्रा जो होना था।

ग्राप लोग बड़े उत्सुक मालूम हो रहे हैं— यह जानने के लिये कि वे पुड़िया क्या थी ? पर, ग्रापको तो कोई रोग नहीं है। क्या ग्राप भी ग्रपने को रोगी समझते हैं। यदि हां, तो लीजिये— वे पुड़ियां मैं भी ग्रापको देऊं। पर, सावधान कहीं ग्राप भी उस ग्रसावधान मनुष्य की तरह पुड़ियों का पलट मत कर लेना।

भगवान की दी हुई ४ पुड़ियां हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इसे पुरुषार्थ मनुष्य भी कहते हैं।

इन ४ में २ अन्दर पीने की हैं—धर्म और मोक्ष। और दो बाहर लगाने की है। अर्थ और काम पर उस मानव ने उलटा ही किया। अर्थ और काम को पी गया, और धर्म और मोक्ष को बाहर लगा दिया—दिखावे की वस्तु बना दिया।

धर्म हमारे जीवन में उतारने के लिये है। और हमारा अन्तिम लक्ष्य मोक्ष होना चाहिये। अर्थ और काम भी ग्रहस्थ की व्यवस्था चलाने मात्र को आवश्यक है। वे भी धर्मपूर्वक और अग्रस्थ मोक्ष के साधन के लिये होने चाहिये थे। धर्म और मोक्ष के नियन्त्रण में अर्थ और काम को रखने का कारण भी यही था।

हमने धर्म को ढोंग का रूप दे दिया है। जो धर्म अन्तर में होना चाहिये था—उसे लोग दिखावे के रूप में स्वीकार कर रखा है और मुक्ति का उद्देश्य तो प्रायः भूल ही गये।

लोग कहते हैं–आज इतवार था–इसलिये चले आये महाराज गोया वेकारों का प्रेसिडेन्ट आपने हमको ही समझ लिया। ज़रा धर्म और धर्मोपदेशको का सम्मान करना सीखो।

आजकल धर्म से ज़्यादा महत्व सम्पत्ति को—पैसे को—दे रक्खा है। पर यह आप लोगों की भूल है। माना कि सम्पत्ति कारण बहुत से मूर्ख भी कुर्सी पर बैठ कर हुकूमत करते हैं—पर वस्तुतः पैसे के संग्रह में नहीं, त्याग में ही महत्व है।

आज आपके और मेरे बीच यही समस्या है।

एक बार स्वामी रामतीर्थ अमेरिका में गये। वहाँ जहाज से उतरते ही एक अमरीकन उनका भक्त बन गया। भारत से अमेरिका पहुंचने तक उनके ठहरने की कोई व्यवस्था नहीं थी।

जहाज के एक साथी ने पूछा—महाराज। आप कहां ठहरेंगे और राम ने कहा—तेरे घर। इतना प्रभाव पड़ा उनके आत्म-बल का कि वह आनन्द विभोर हो गया। और उनको अपना अतिथि बनाया।

अमेरिका में स्वामी रामतीर्थ के व्याख्यानों की धूम लग गई अमरीकन भक्त सदा उनके साथ रहता। स्वामी राम सदा धन की—दौलत की—सम्पत्ति की अवहेलना करते रहते थे। कहते थे—धन से सुख नहीं मिलता। त्याग ही सर्वोत्तम तत्व है। शिष्य धन में ही सब स्वप्न देखता था। त्याग और अनुराग का संघर्ष था

एक दिन आपसे गुरु शिष्य व्याख्यान से आते समय एक नदी पार करने का अवसर आया। नाविक ने कहा पार होने में चार आने लगेंगे। शिष्य की बन आई। कहने लगा—स्वामी जी आज आपके सिद्धान्त की कसौटी है। देखिये जरा सा नाला भी पैसे बिना पार नहीं कर सकते। फिर भी संसार सागर की तो बात ही क्या है।

गुरू गम्भीर ज्ञानी थे। मौन रहे। शिष्य ने २ टिकट लिये और पार हो गये। शिष्य की विजय हो गई थी। उसने फिर सगर्व कहा...'स्वामी जी देखलिया न आज अपने पैसे से ही पार हुए हैं।''

अब तो गुरू जी भी उसे रचनात्मक उपदेश दे चुके थे। संकेत की आवश्यकता थी। बोले—

बेटा अब भी तू भ्रम में हैं। पैसे के त्याग से ही अपन पार हुए हैं। यदि तू पैसे को पास ही रखता त्याग नहीं करता तो क्या पार हो सकते थे। जिस प्रकार ४ आने के त्याग से यह

नाला पार किया गया—इसी प्रकार ममत्व त्याग से संसार सागर पार किया जाता है।

अमेरिका ने एक बार गांधी जी से पूछा—हमें क्या करना चाहिये। उत्तर में गांधी जी ने लिखा था..."अमेरिका के सिंहासन पर जो आपने डेलर को बिठा रखा है—उसकी जगह [illegible] के नाम को बिठाओ।

अमरिका डालर से आज भी इन्सानों को खरीद रहा है। इन्सानियत खरीद रहा है।

महाराज श्री मथुरा मुनि जी ने कहा था कि लाल चन्द सेठ के पास ७०० रुपये की नोली रही तब तक भय रहा और वह नोली एक दिन के लिये ही सही दूसरे के जिम्मे कर दी—नगद नारायण बन गया—तो भय बिल्कुल नहीं रहा।

त्याग में ही श्री है, त्याग में ही प्रेम है—त्याग संसार का सर्वोत्तम मार्ग है। जिस पर चल कर मनुष्य देवता बन जाता है।

गोधन, गजधन, वाजिधन की तरह तपधन, ज्ञानधन, विद्या धन आदि धन माने जाते हैं। इससे धन शब्द परिग्रह में शामिल हो जाय यह बात नहीं है।

हम इसी लिये धन की नीची वस्तु भी स्वीकार नहीं करते। स्त्री एक सम्पत्ति है—तो पुरुष भी एक सम्पत्ति है ज्ञान और तप भी एक सम्पत्ति है ज्ञान को धन का शिरोमणि माना गया है।

४ याम और ५ याम क्या हैं? मैं आज शास्त्रीय विवाद रख रहा हूं। ३०० वर्ष पुरानी बात कर रहा हूं।

बुद्ध का अष्टांगिक मार्ग व्रज की धारा में गिना जाता है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भगवान महावीर के

४ याम के ही दो-दो भेद करके बुद्ध ने अष्ट याम का सृजन किया।

बौद्ध दर्शन और साहित्य के उद्‌गम विद्वान-जिन की विद्वता को आज सारी दुनिया स्वीकार करती है उन्होंने अपनी पुस्तक पार्वनाथाया चार याम' में स्वीकार किया है कि भगवान पार्श्वनाथ के ४ याम के आधार से ही भगवान बुद्ध ने अष्ट याम या अष्टांगिक धर्म प्रतिपादिन किया है।

यह श्रमण परम्परा का वर्णन कर रहा हूं। श्रमण परपंरा के प्रवर्तक वैद्धिक धर्म में-दत्तामय, परम हंस, विनय, उदासीन आदि श्रमण परपंरा के रूप है।

व्रातों में जैन धर्म बौद्ध रहे है जिन्होने श्रमण परपंरा संगठित रूप से प्रोत्साहन दिया।

विष्णु पुराण के यहिं प्रकरण में श्रमण परम्परा का कुछ वर्णन मिलता है फिर भी वैदिक धर्म में कोई अनुशासन बुद्ध शास्त्र नहीं श्रमण परम्परा का विवेचन करे।

गृहस्थ धर्म का विवेचन वैदिक साहित्य में भर भार है।

यदि यह कहा जाय कि आत्मा श्रमण है शरीर वैदिक है तो अतिश्योक्ति न होगी। जैन धर्म की यह तारीफ है कि वे समाज व्यवस्था में भंग नहीं डालता।

सामाजिक संस्कारों में वह किसी से घृणा नहीं करता। भगवान का महावीर का विवाह किसने कराया ब्राम्हणों ने। समाज को एकता अत्यंत जरूरी है। यह राष्ट्रीय प्रश्न है। राष्ट्र एक रखने के लिये संस्कार एक होना आवश्यक है। संस्कारों का क्रम टूटना नहीं चाहिये।

आत्म धर्म का प्रश्न है वहाँ त्याग को महत्व दिया जाना

है। वहां महा व्रतो की प्रतिष्ठा की जाती है।

प्रश्न उपस्थित होता है व्रत की क्या आवश्यक है ? उत्तर है कि आत्मा को सफल बनाने वाले, आत्मा को दूपित बनाने वाले आन्तरिक कारण ५ है।

हिंसा

असत्य

चोरी

व्यक्तिभार

परिग्रह

हिंसा मन वचन काया से करते हैं। पांच याम की जगह केवल १ याम अहिंसा रखले। शेष कुछ नहीं रखना अहिंसा का दायरा इतना विशाल तम है कि इस में शेष चारों याम समाविष्ट हो जाते हैं। यदि आप हिंसा करना ही बन्द कर देने है- तो फिर कुछ बचता ही क्या है।

हिंसा अधर्म है। और अहिंसा धर्म है। हिंसा मन से वाणी से और शरीर से की जाती हैं। मन से किसी का बुरा चाहना। पराधीन और गुलाम बनाने का विचार करना मन की हिंसा है।

कटु वचना बोलना, असत्य भापण करना, विकथा करना यह वाणी की हिंसा है।

इसी प्रकार हाथों से दुःख देना, पैरों से कुचलना, किसी को पीड़ा पहुंचाना शारीरिक हिंसा है।

झूठ हिंसा से बाहर नहीं। मन की ठेस पहुंचना हिंसा है। जैसे हिंसा की व्याख्या प्रमाद के योग से प्राणका व्यपरोपण को हिंसा कहा है। झूठ भी हिंसा की विशेष व्याख्या है। आप ज्यादा

समझ सकें इसलिये झूठ का दूसरा विवेचन किया जाता है।

चोरी का अर्थ है किसी के अधिकार की वस्तु उसकी बिना आज्ञा से लेना किसी के अधिकार को ठेस पहुचाना हिंसा होती है। अहिंसा कभी चोरी नहीं कर सकता। धन लुटने पर कभी २ हार्ट फेल हो जाता है।

एक यथार्थ घटना है। आप सुनकर हैरान हो जायेंगे।

एक यात्री जा रहा था। विश्राम के लिये किसी वृक्ष के नीचे बैठ गया। पास ही एक चूहे का बिल था। चूहा बिल से एक रुपया डाला और बाहर रख दिया। मुसाफिर चकित हो गया। इसी प्रकार एक-एक करके १६ रुपये बाहर लाया। वह चूहा अपना वैभव प्रदर्शित कर रहा था। वह फिर अन्दर गया रुपये लाने पर मुसाफिर को आगे जाना था वह रुपये उठा कर कर चल दिया।

चूहा वापस आया वहां रुपये नही देखें—बेहोश हो गया तपड़-तपड़ कर वही मर गया।

ये लोग उस चूहे से कम नहीं जो जान देदेंगे पर धन नहीं छोड़ना चाहते। न जाने कहां ले जायेंगे।

वह प्राणी मर गया। चोरी का परिणाम प्राणी हिंसा ही होता है।

व्यभिचार क्या है। हिंसा। रागद्वेष आत्मा की हिंसा। जीवों की उसमें प्रत्यक्ष हिंसा है। मनुष्य अपनी शक्ति का नाश करता है। विवेक की हिंसा करता है, ज्ञान की हिंसा करता है। व्यभिचार घार में अपनी व पराई दोनों हिंसा करता है।

सम्पत्ति परिग्रह नही। वह तो बाह्य परिग्रह है। वास्तविक परिग्रह वस्तु पर आसक्ति है। अवंन शक्ति और श्रद्धा के भण्डार

है। यह चांदी के टुकड़ों पर गुप्तमी क्यों, करते हो। ये रूप हिंसा में समाविष्ट होते हैं।

- इसलिये अहिंसा महाव्रत एक मात्र धर्म है और हिंसा ही अधर्म है शेष हिंसा और अहिंसा की व्याख्या है।

जितने प्रकार की हिंसा है हिंसा से अहिंसा कोई कम नहीं। यदि ऐसा ही होता तो हिंसा पर अहिंसा की विजय न होती।

पेड़े में जहर देना हिंसा है तो उसे बचा देना अहिंसा है।

कुछ लोग कहते है महावीर की अहिंसा व्यक्तिगत अहिंसा है।

यह मानना व्यर्थ की है। कोई उन्हें कृष्ण का हितोपदेश केवल कुरु क्षेत्र तक सीमित है या ईसा का पार्वतीय उपदेश वहीं तक सीमित है तो यह उनका भ्रम है। उनकी वाणी से जहां-जहां गुत्थियां सुलझती हैं। नहीं उसका उपयोग है वहि यह वाणी उस समय की समस्या का हल था तो आज की समस्या को वह हल करे इसमें क्या मीन दोष ?

भगवान की अहिंसा जितनी सूक्ष्म है उतनी ही महान है

पार्श्वनाथ का चौथा याम था वस्तिदातोओं वैरमणम्। अर्थात वाह्य पदार्थों से विरमि। इसमें भौतिक पदार्थों पर आसक्ति का नाम परिग्रह था इसमें स्त्री या पुरुष की आसक्ति भी समाविष्ट थी,

कामी को आसक्ति अवश्य होती है। बिना आशक्ति के काफी कही सुनने में आया है। क्या इसी अशक्ति और मूर्च्छाकि नाम परिग्रह है।

वह चूहा जो धन के लिये मर मिटा। वासना पर भी लोग मर मिटते है।

४ के ५ नाम बनाये केवल व्यवस्था के लिये। अहिंसा की विशेष व्याख्या के लिये। वैसे तो धर्म हैं अहिंसा और अधर्म है हिंसा।

अभी मैं जिकर कर गया हूं अपने मित्रों का धर्म कह कर अपने आपको पाप से बचा लेने का नाम धर्म कहते हैं। धर्म का दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं।

जब विपत्ति पड़ती है धन को छोड़ो, घर में आग लगी घर छोड़ दो। गाव पर आफत आए गांव छोड़ दो। ऐसे लोग पलायन वादी है।

धर्म का कहना है जहां तक संकट है खडे रहो और मुकाबिला करो।

आपत्ति में मुकाबिला करो और आनन्द में भी मुकाबिला करो! धर्म की परीक्षा तो आपत्ति में ही सबसे ज्यादा होगी।

हम हिंसा झुठ से बच जाये यदि-यहीं धर्म है बतालाइये आप हिंसा किस को कहते है। झूठ किसे बतलाते हैं। चोरी किसको कहते हैं। व्यभिचार किसे करते हैं। यदि आपने आपको बचाने का नाम धर्म तो फिर दूसरे का क्या वास्ता।

परन्तु आदमी अपने आपको नही मारता संभव है कभी २ आत्मघात करता है। झूठ क्या क्रुद से बतलाया है। यह तो दूसरे की ही आखों में धूल झोकना है।

धर्म व्यक्तिगत ही है तो फिर आपका समाज से क्या सम्बन्ध। क्यों समाज में सांस लेते है आप।

यह तो यह हुआ।
कोई करे कोई जीवे।
ससुरा आले पतासा पीवे ।।

यदि तुम्हारा हृदय दूसरे पीड़ा से दहल न जाये। यदि तुम्हारा कलेश कोद न उठे तो फिर अनुभूति क्या हुई। तुम्हारे सामने एक गाय को मार रहा है। उसका तुम्हे ख्याल नहीं तुम यह न सोचो कि यह भी किसी का मन है। यह भी किसी के दिल का टुकड़ा है तो तुम्हारा हृदय पत्थर का नही तो और क्या है।

नारायण गांव की बात कर रहा हूं। यहां तो एक कसाई अभी भी रहता है। वह भक्त कहता है अपने आपको संतों का। बड़ी ज्ञान चर्चा करता है। श्री गणेशीलाल जी महाराज के व्याख्या में बिना मुंह पति के कोई नहीं आ सकता यह नियम है तो वह पट्टि बांध कर आता है। मुझे नहीं मालूम था कि उसकी दूकान कसाई की है। हम जेशल जाने तो उसके आंगन में बकरा लटका रहता। यह बात जब मुझे मालूम हुई तो उससे मैंने एक दिन पूछा, कि भाई तुम बड़े धर्मात्मा बनते थे और कसाई गिरी करते हो क्या कभी तुमने गाय भी मारी हैं।

उसने कहा साहब तुम बकरे काटते हैं हिन्दू लोग बड़े पापी हैं हम बड़ी रहम से बकरे को काटते है नीचे की नस काट देते है वह झट मर जाता है।

उसने कहना जारी रखा जिन्दगी में केवल एक बार गाय काटी एक बार अकाल गिर गया। हमारा प्रांत बिना पानी के तड़फा। यहां पशुओं का पालन करना कठिन हो गया। कोडियों मोर ठोर बिकने वाला। एक हिन्दू का नियम था कि वह कसाई को गाय नहीं बेचता। मैं उसके पास गाय लेने गया। और उसे धोखा देकर गाय ले आया कि मैंने इसे पालने के लिये लेता हूं। मारूंगा नहीं। मैं गाय लाया और उसे बधशाला की तरफ ले

जाने लगे। वह बुरी तरह चिल्लाने लगी। परन्तु हमें उसका कोई खयाल नहीं आया।

उस गाय के फाटते ही मेरे शरीर में न जाने क्या रोग हुआ कि मुझे लकवे जैसा हो गया। चलना फिरना मुश्किल हो गया। खाट पकड़ती। बम्बई से दवाये मंगाई। आयुर्वेदिक, एलोपैथिक और युनानी सब इलाज किये। पर मर्ज लाइलाज हो गया। धीरे-धीरे मैं स्वयं हकीम बन गया। मेरे पास छोटा मोटा दवा खाना हो गया। मैं निराश हो गया।

सयोग से एक पचका हुवा आभ्रमण फकीर आया। मैंने उसकी तारीफ सुनी। उसको बुलाया। उसने मुझे देखा और कहा ७-८ महीने पहले तुमने कोइ भयकर पाप किया है याद कर उसी का नतीजा है कि तुम्हारी यह हालत हुई।

धीरे-धीरे मुझे धुंधली रेखा स्पष्ट हुई उस फकीर से कहा मैंने धोखा देकर एक गाय मारी थी।

फकीर ने कहा बस तो ७ बार तक मैं आऊंगा। दुष्ट तूने बुरा काम किया।

मैंने उनकी मिन्नता से हाथ जोड़े और कहा इसका कोई उपाय बताईये।

उन्होंने कहा—जा तू गायों की सेवा कर। अपने हाथ से तूं उनको घास खिला ठीक हो जावेगा।

तब से मैंने गायों की सेवा करी स्वयं जाकर घास खिलाने लगा उनका शरीर साफ करने लगा। २०-२५ दिन में धीरे-२ रोग दूर होने लगा। और अब बिलकुल स्वस्थ हूं।

तात्पर्य यह कि गाय के मारने में अधर्म है तो गाय की सेवा में धर्म है और उनको बचाने में धर्म है ही इसे कोई धर्म शास्त्र

इन्कार नहीं कर सकता।

आपकी अहिंसा का रूप विराट होना चाहिये। धर्म सामाजिक है। सामूसिक और व्यक्तिगत नहीं। भगवान महावीर में एकांत में बैठने को धर्म नहीं कहा। समाज में अनेक उपासना में करने का नाम धर्म है।

पंच महाव्रत विराट हैं एक के चार रूप हो ५ रूप हो कोई हानि नहीं। अणुपाल ५-१२ या १४ हो कोई हानि नहीं। पर उनका दायरा संकुचित नहीं होना चाहिये।

रोटी न खाऊं धर्म है व्रत है। पर वह बची हुई रोटी तड़फते प्राणी को खिलाऊं तो क्या हुआ।

अणु व्रत में यह नहीं करूगा। यह नहीं करूगा। यहीं सब कुछ है। यदि तुम्हारे अणुव्रत आन्दोलन में कुछ करने का विधान नहीं है तो वह केवल खोखला है।

एक विद्यार्थी नकल न करे, झूठ न बोले पर यदि कोई छात्र गरीब है तो उसे पुस्तक दे। उसकी फीस दे। क्या यह भी तुम्हारे अणुव्रत आन्दोलन में बनाया गया हैं।

यदि नहीं तो वह केवल ढोग उसका व्यवहारिक उपयोग कुछ भी नहीं।

अन्त में फिर कहुंगा कि ४ या ५ याम केवल विशद व्याख्या के लिये है भगवान महावीर और पार्श्वनाथ में कोई मतभेद नहीं।

जैनाम्बर मीमांसा

बीर जिनेश्वर सोई, दुनिया जगाई तूने।
ज्ञान की मधुर सुरीली, बंसी बजाई तूने॥
आत्म की नैया जोड़ी, मृत्यु आखिर पै वोली।

स्वर्ग से आकर भगवन, पार लगाई तूने ।।वीर।।
पशुओं पर छुरियां चलती, रक्त की नदियां बहती।
करूणा के सागर करुणा, गंगा बताई तूने ।।वीर।।
देवों की करना पूजा, बस काम न था और दूजा ।
मानव की बस आल प्रतिज्ञा, जग में जगाई तूने ।।
।। वीर ।।

यदि आप में अहिंसा संयम और तप है तो देव ही नही समस्त प्राकृतिक शक्तियां चरणों मे आ झुकेंगी । यह मैं अपनी नहीं आगम की बात कह रही हूं ।

आज जैनाचार मीमासा पर कुछ कहना है । विचार अथवा दर्शन शास्त्र के वाद आचार शास्त्र का जानना आवश्यक है ।

आचार को धर्म शास्त्र में चारित्र और समाज में नीति शास्त्र कहा जाता है । साहित्य उसे आचार शास्त्र कहते हैं । नीति और चरित्र एक दूसरे के पूरक हैं । यदि मैं कह दें कि नीति की नींव पर चरित्र का महत्व खड़ा किया जाता है तो ज्यादा उपयुक्त होगा ।

जैन धर्म के आचार को नीति नही परन्तु चरित्र मीमांसा कहा जाय तो ज्यादा उपयुक्त होगा ।

आचार और नीति में अन्तर बताया है । मैं उद्देश्य से एक मालूम होते हैं । पर इनके साधन और वर्तन में अन्तर हैं ।

नीति में समृद्धि और समाज व्यवस्था का ध्यान रखा जाता है । चरित्र में मानवता ही नहीं परन्तु समस्त संसार के प्राणियों के कल्याण का उद्देश्य रहता है ।

नीति के नियम के पालन में एक के सुख के साथ दूसरे को दुःख भी हो सकता है। परन्तु चरित्र में किसी भी प्राणी को कष्ट हो यह क्षमा नहीं है।

यही कारण है कि बलिदान और कुर्बानी में नीति चाहते भी जाय पर, वह धर्म या चरित्र कदापि नहीं।

'नीति चरित्र की सहायक है।'

कल विचार मीमांसा में ज्ञान पर बल दिया गया था। चरित्र का अन्तिम विकास यथाख्यात चरित्र है। जिसका उद्देश्य है आत्मा एक। चरित्र वह मार्ग है जो आत्म लाभ तक पहुंचा देता है।

ज्ञान द्वारा सत्यात्य का निर्णय किया, सम्यादर्शन द्वारा दृढ़ प्रतीति हुई, और चरित्र द्वारा आत्म शुद्धि करके मोक्ष प्राप्ति यही क्रम है हमारे जीवन का विकास था।

आत्मा कर्मों के बन्धनों से आबद्ध है। मारे उसे भंवर में डालकर चक्कर दे रहा है। हम इनसे छूटकर आभिरक्षण कर सकें इसके दिये चारित्र का पालन आवश्यक है।

आत्मा में दो प्रकार के दोष समाविष्ट हुए हैं। आंतरंग और बहिरंग।

रोगी की चिकित्सा में रोगों की बहिरंगता, अंतरंगा, समझ कर जिस प्रकार चिकित्सक चिकित्सा करता है उसी प्रकार ज्ञानियों ने जीव की कर्म व्याधियों की चिकित्सा का विधान किया है।

आत्मा के साथ लगे हुए कर्म बन्धन को दूर करने का नाम चरित्र है। चरित्र को कोई धर्म नहीं कहा गया। चरित्र आत्म स्वरूप ही है।

सारे लोक पर जरा विहंगम दृष्टि डालिये और देखिये कि—पाप बुराई या अमानुषिकता क्या है ?

असमानता पहली बुराई है। संसार के सब प्राणियों में जीवन की इच्छा है। घोरतम मिथ्यात्व में स्थित प्राणी में भी चेतनत्व है। अतएव शास्त्रकारों ने मिथ्यात्व को भी गुण स्थान-गुण का स्थान देकर जड़त्व से भिन्न किया है। इस प्रकार प्रारम्भिक चेतनत्व की अपेक्षा सब प्राणियों में समानता है।

पर, आप दूसरे का बलिदान देकर स्वयं जीना चाहते हैं। आप अपने आपको कोई विशेष महत्व का प्राणी समझते हो और इसलिये आप दूसरे प्राण पर भी जीवित रहना चाहते हो। यही दोष हिंसा का इसी विषमता के दोष ने संसार को तबाही के सागर में धकेल दिया।

हिंसा मन वाणी और काया द्वारा होती है इस दोष सबसे पहले दूर करना चरित्र पालने के मार्ग में प्रथम चरण-चरण है।

अस्वस्थ व्यक्ति की चिकित्सा दो प्रकार से की जाती है। एक काष्ठौषधियों द्वारा दूसरा रसौषधियों द्वारा। प्रथम में चिकित्सा समय कुछ ज्यादा लगता है—पर द्वितीय में चिकित्सा शीघ्र हो जाती है।

इसी प्रकार तीर्थंकर देव ने अत्यन्त करुणा पूर्वक धर्मों का प्रतिपादन किया। आगार धर्म और अनागार धर्म।

आगार धर्म गृहस्थों के लिये पल्लवित किया गया है। गृहस्थ के लिये व्रत ५ से १२ तक बताये गये हैं।

जीवन को मर्यादित करने का नाम व्रत है। जीवन में दोष हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार और मूर्च्छा द्वारा लगता है।

यदि आप दोषों के वर्गीकरण को केवल एक शब्द में सुनना चाहते हैं—तो वह है हिंसा। संसार के सभी दोष हिंसा के ही बच्चे-कच्चे या भाई-बहन हैं।

दोष ५ प्रकार के हैं। मिथ्यात्व अव्रत प्रमाद कषाय और योग।

मिथ्यात्व भ्रान्त धारणा का नाम है। विचार मीमांसा द्वारा इसका निराकरण किया जा सकता है। मिथ्यात्व के दूर होने पर सम्यकत्व का प्रादुर्भाव होगा और आप में उसके लाक्षणिक चिन्ह—सम, संवेद, निर्वेद अनुकम्पा और आसिक्यक प्रादुर्भाव होगा। समाक्त्व आ जाने पर आप आसिक्यक आ जायेगी। संसार से विरक्ति हो जायेगी।

अव्रत का दोष सामायिक द्वारा दूर किया जायेगा। हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म और मूर्च्छा, में संसार सागर में डुबाने वाला है।

यदि आप घर में रहकर धर्म करना चाहते हैं। तो आप आव्रत का पालन करिये। लोग कहते हैं। घर में धर्म नहीं हो सकता। पर, यदि घर में भी धर्म न हो सकता होता भगवान भगवान क्यों फरमाते—

आगार धर्मे अरणगार धर्मे—जैन इतिहास आपको बताता भरत चक्रवर्ती स्वयं गृहस्थ अवस्थायें धर्म का अराधन करते थे। माँ मरूदेवी हाथी तोबे पर केवडी बनी।

संसार में रहकर अपने कर्तव्य का पालन करते हुए यदि अनासउत धर्म का आरावन करते है।

कुछ लोगों का ख्याल है कि व्यापार करते समय, कृपि

करते समय या संसार के अन्य कर्तव्यों का पालन करते समय धर्म का अराधन नहीं हो सकता।

यह सब आलस्य का द्योतक है। आप भी पकी-पकाई खाने के इच्छुक हैं।

यदि आप कृषि या गौ पालन करते हैं तो विवेकपूर्वक करेंगे। और उसमें हिंसा आदि का भी विवेक करेंगे। आप समझते हैं—गौ पालन में अनेक पाप लगाते हैं। इसलिये चार आने फेंके और दूध ले आये।

क्या आप बता सकते हैं कि वह दूध दूध वाला अपना निकाल कर लाता है? क्या वह उस बछड़े पर भी दया करता है या नहीं जिसका प्रथम अधिकार दूध पर है। लोग दूध के साथ गाय का खून और हड्डियाँ भी निचोड़ लेते हैं। क्या कभी आपने सोचा कि लोग गाय के पूंछ लगाकर दूध का आखरी बूंद भी निकाल लेते हैं अब जरा हृदय पर हाथ रख कर बताइये कि ऐसा दूध पीकर आप संसार का कौन सा कल्याण कर जायेंगे।

यदि कोई व्यक्ति किसी के मुंह की रोटी छीनकर तुम्हें खिलावे तो क्या आप खायेंगे? नहीं। फिर आप गौपालन में पाप क्यों समझते हैं? किसने भर दिया यह भूसा आपके दिमाग में।

जैन धर्म कायरों का धर्म नहीं है। वह पुरुषार्थवादी धर्म है। विवेक दृष्टि रखकर काम करो। पकी-पकाई में पाप की अधिकता है। यदि आप इस प्रकार के कर्तव्य को भी पाप समझने लग जायेंगे तो फिर आप लोगों के खाने और वेश्या-वृत्ति को प्रोत्साहन देने लग जायेंगे।

हिंसा क्या है? भगवान महावीर ने हिंसा के चार भेद

बतलाये हैं। (१) आरंभी, (२) उद्योगी, (३) विरोधी, और (४) संकल्पी।

तुम ३ का त्याग नहीं कर सकते पर संकल्पी हिंसा का त्याग करना होगा।

आरंभी—भोजन बनाने, स्नान करने, वस्त्र धोने, मकान बनाने आदि में जो आरंभ होता है। वह आरंभी हिंसा और गृहस्थ इसका त्याग नहीं कर सकता।

उद्योगी—कृषि करने, गोपालन करने, वस्त्र बनाने या अन्य व्यापार करने में जो ज्ञान. अज्ञान अवस्था में हिंसा हो जाती है। उसका भी गृहस्थ त्याग नहीं कर सकता।

विरोधी—ठग, चोर, जार, लुटेरा, देश के दुश्मन आदि से आत्म रक्षा करते समय कदाचित हिंसा हो जाय—तो गृहस्थ उसका त्याग नहीं कर सकता।

संकल्पी—जानबूझ कर संकल्प पूर्वक किसी जीव को मारना, संकल्पी हिंसा है—श्रावक को इसका अवश्य त्याग करना चाहिये।

यदि आप लोग केवल संकल्पी हिंसा का ही त्याग कर दें। संसार का कोई मानव किसी को भी संकल्प पूर्वक न सतावे तो यह संसार स्वर्ग हो जाये।

श्रावक श्रमण भूत कहलाता है। तुम्हारे पूर्वज उपासकों का वर्णन पढ़ जाओ और देखो कि उनमें सब श्रावक कृषि वाणिज्य गौपालन और कुम्भकार तक का काम करते थे। फिर भी भगवान के प्रेरक श्रावक थे।

श्रावक तीन प्रकार के होते हैं। उनके अणु व्रतों के पालन की पद्धति का एक माप बना दिया है वह तीन प्रकार का है।

प्रारंभिक—जो अणुव्रत के कुछ अंशों का पालन करें।

नैष्ठिक—जो अणुव्रत के अधिक अंशों का पालन करे।

पूर्ण—जो पूर्ण रूप से अणुव्रत का पालन करे।

यदि आप पूर्ण रूप से सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन नहीं कर सकते तो स्थूल झूठ, स्थूल चोरी, व्यभिचार इनका सेवन न करो। मूर्च्छा की कमी करो। परिग्रह की मर्यादा करो।

श्रावक के ५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रत कहे गये हैं।

मुनि लोगों की मर्यादा और भी बढ़ी हुई होती है। वे हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म और मूर्छा का सर्वथा त्याग करते हैं। वे मन, वचन और काय द्वारा इनका सेवन नहीं करते। उनका अन्तर बाहर एक होता है।

मनस्येकं वचस्येकं,
कर्मण्येकं महात्मानाम्।
मनस्यन्यद् वचस्यन्यत्,
कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्॥

साधु का जीवन कितना महान है वह भोजन की बुराई के दोष तक बचाकर श्रमक बनता है।

साधु और श्रावक को प्रत्येक व्रत के ५–५ अतिचार त्याज्य है।

चारित्र के ५ भेद हैं —(१) सामायिक चारित्र, (२) छेदोपस्थापनीय चारित्र, (३) परिहार विशुद्ध चारित्र, (४) सूक्ष्म संपराय चारित्र और यथा ख्यात चारित्र।

व्याख्या—चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय उपशम या क्षयोपशम से होने वाले विरति परिणाम चारित्र कहते हैं।

१. सामयिक चरित्र—सम राग द्वेष रहित आत्मा के प्रति-क्षण अपूर्व २ निर्जला से होने वाली आत्म-विशुद्धि का प्राप्त होना सामायिक है। अथवा सर्व सावद्य व्यापार का त्याग करना एवं निरवद्य व्यापार का सेवन करना सामायिक चारित्र है। सामायिक दो प्रकार की हैं :—

(क) इत्वर कालिक—जो अल्प काल के लिये की जाती है। जिसे श्रावक करना है।

(ख) भावा-कथिक—जिसे मुनि अंगीकार करते हैं। पर जीवन पर्याप्त की सामायिक करते हैं।

२. २. छेदो पस्थापनिक चरित्र—जिस चारित्र में पूर्व पर्याप्त का छेद एवं महाव्रतों में उपस्थापन-आरोपण होता है उसे छेदों पस्थापनिक चारित्र करते हैं।

अथवा

पूर्व पर्याय का छेद करके जो महाव्रत दिये जाते हैं उसे छेदों पर स्थापनिक चरित्र कराते हैं। यह भी निरतिचार और स्यति-चार होता है।

३. परिहार विशुद्धि चरित्र—जिस चरित्र में परिहार तप विशेष से कर्म निर्जला रूप शुद्धि होती है—उसे परिहार विशुद्ध चरित्र कहते हैं।

४. सूक्ष्म संपराय चरित्र—संपराय का अर्थ कषाय होता है। जिस चारित्र में सूक्ष्म संपराय अर्थात संज्वदान लोभ का सूक्ष्म अंश रहता है। उसे सूक्ष्म संपराय चरित्र कहते है।

५. यथाख्याल चारित्र—सर्वथा कषाय के उदय न होने से अति चार रहित पार मार्थिक रूप से प्रसिद्ध चारित्र यथा, ख्यान चारित्र कहलाता है। अथवा अनुपायी साधु का निरतिचार

यथार्थ चारित्र तथा ख्याल चारित्र कहलाता है।

घयस्थ और केवली के भेद से मत दो प्रकार का है।

ये बारह व्रत और ५ चारित्र गुण स्थान भुम से होते हैं।

गुणस्थान—गुण (आत्म शक्तियों) के स्थानों अर्थात भुमिक विकास की अवस्था सो गुण स्थान करते हैं।

मोक्ष—मोक्ष का अर्थ है—आध्यात्मिक विकास की पूर्णतः यह पूर्णता एकाएक पूर्णता एकाएक प्राप्त नहीं होती अनेक भवों में भ्रमण करता हुवा जीव धीरे धीरे उन्नति करके उस अवस्था को पहुंचाना है। आत्म विकास के उस मार्ग में जीव जिन जिन अवस्थाओं को प्राप्त करता है उन्हें गुण स्थान कहा जाता है। भारत के सभी दर्शनों ने जीव के विकास श्रम का माना है। परिभाषा तथा प्रतिपादन शैली का भेद होने पर भी सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर उनमें बहुत समानता मालूम पड़ती है।

अन्य दर्शनों की चर्चा करना आज का हमारा विषय नहीं है। अतः जैन दृष्टि से आत्मा के विकास भ्रम का वर्णन किया जाता है।

आत्मा को अवस्था किसी समय अज्ञान पूर्ण होती है यह अवस्था सबसे प्रथम होने के कारण निकृष्ट है। उस अवस्था से आत्मा अपने स्वभाविक चेतना चरित्र आदि गुणों के विकास द्वारा निकलना है। धीरे धीरे उन शक्तियों के विकास के अनुसार अंकित करता हुवा विकास की पूर्णता अर्थात अंतिम रद्द को पहुंच जाता है। पहली निष्कृष्ट अवस्था से निकल कर विकास की अंतिम अवस्था को प्राप्त करना ही आत्मा का परम साध्य है। इस परम साध्य की सिद्धि होने तक आत्मा को एक के बाद दूसरी के बाद तीसरी, ऐसी अनेक अवस्थाओं मे से गुजरना

पड़ता है । इन्हीं अवस्थाओं की श्रेणी को विकास श्रम या उत्क्रांति मार्ग कहते हैं । जैन शास्त्रों में इसे गुण-स्थान कहा जाता है इस विकास श्रम के समय होने वाली आत्मा की भिन्न-२ आवश्यकताओं का संक्षेप १४ भागों कर दिया है । ये चौदह भाग गुण स्थान के नाम से प्रसिद्ध है ।

प्रथम ३ गुण स्थान में दर्शन और चारित्र का विकास नहीं होता है चौथे गुण स्थान से दर्शन का और पांचवें गुण स्थान से चारित्र का विकास आरम्भ होता है ।

१. मिथ्यात्व गुण स्थान—मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से जिस अवस्था में जीव की दृष्टि (श्रद्धा या ज्ञान) मिथ्या (उल्टी) होती है । उसे मिथ्या दृष्टि गुण स्थान कहते है ।

२. सास्वादन गुण स्थान—जो जीव औपशमिक सम्यकत्व वाला है—परन्तु अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से सम्भत्व को छोड़कर मिथ्यात्व की ओर झुक रहा है, वह जीव जब तक मिथ्यात्व प्राप्त नहीं कराया तब तक सास्वादन सम्यग्दर्शि— कहलाता है । जीव की इस अवस्था को सास्वादन सम्यादृष्टि गुण स्थान कहते हैं ।

३.सम्यङमिथ्यादृष्टि गुण स्थान या मिश्र गुणस्थान—मिश्र मोहनीय के उदय से जब जीव की दृष्टि कुछ सम्यक (शुद्ध) और कुछ मिथ्या (अशुद्ध) रहती है—उसे सम्यङमिथ्या दृष्टि कहा जाता है । और जीव की इस अवस्था को मिश्र गुण स्थान कहते हैं ।

४. अविरति सम्यादृष्टि गुण स्थान सावद्य व्यापारों को छोड़ देना अर्थात पापजनक व्यापारों से अदालतों जाना विरति है । चरित्र और व्रत विरति का ही नाम है । जो जीव सम्यग-

दृष्टि होकर भी किसी प्रकार से व्रत को धारण नही कर सकता वह जीव अविरति सम्यग्दृष्टि है। और उसका स्वरूप विशेष अविरति सम्यग्दृष्टि गुण स्थान कहा जाता है।

५. देश विरति गुणस्थान—प्रत्याख्यान वरण कषाय के उदय से जो जीव पाप जनक क्रियाओं से सर्वथा निवृत्त न होकर एक देश से निवृत्त होते हैं—वे देश विरल या श्रवक कहलाते हैं। ऐसे जीवों के स्वरूप को देश विरल गुण स्थान कहते हैं।

६. प्रयत्त संयत गुण स्थान—जो जीव पाप जनक व्यापारों से सर्वथा निवृत्त हो जाते हैं वे ही संयत (मुनि) हैं संयम भी जब तक प्रमत्त संयत कहलाते हैं और उनका स्वरूप विशेष प्रयत्त संयत गुण-स्थान है।

७. अप्रमत्त संयत गुण स्थान—जो मुनि निद्रा, विषय, कषाय विकथा आदि प्रमादों का सेवन नहीं करते वे अप्रमत्त सयत है। और उनका स्वरूप विशेष अप्रमत्त सयत गुण स्थान है।

८. निपट्टि (निवृत्ति) बादर गुण स्थान—जिस जीव के अनंतानु बंधी, अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानवरण क्रोध, मान, माया तथा लोभ चारों निवृत्त हो गये तो उसके स्वरूप विशेष को निपट्टि बादर गुण स्थान करते हैं। इस गुण स्थान मे दो श्रेणियां प्रारम्भ होती हैं। उपसम श्रेणी और क्षमक श्रेणी

९ अनियट्टि बादर गुण स्थान—सज्वलन क्रोध मान, माया कषाय से जहां निवृत्ति न हुई तो ऐसी अवस्था विशेष को अनियट्टि बादर गुण स्थान कहते हैं।

१० सूक्ष्म संपराय गुण स्थान—इस गुण स्थान में सम्पराय अर्थात् लोभ कषाय के सूक्ष्म खण्डों का ही उदय रहता है।

११. उपशांत कषाय वीतराग छमस्थ गुण स्थान—जिनके कषाय उपशांत हुए हैं—जिन को राग अर्थात् माया और लोभ का भी विल्कुल उदय नहीं है और जिनको छव (आवरण भूत घाती कर्म) लगे हुए हैं वे जीव उपशांत कषाय वीराग छमस्थ कहलाते हैं। उसके स्वरूप को उपशांत कषाय वीतराग छमस्थ गुण स्थान कहते हैं।

१२. क्षीण कषाय छमस्थ वीतराग गुणस्थान—जिस जीव ने मोतनीय कर्म का सर्वथा क्षमा कर दिया है। किन्तु शेष क्षम (घाती कर्म) अभी विद्यमान है उसे क्षीण कषाय वीतराग छमस्थ कहते हैं और उसके स्वरूप को क्षीण कषाय वीतराग छमस्थ गुण स्थान कहते हैं।

१३. संयोगी केवली गुणस्थान–जिन्होंने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, और अनाराम चार घाती कर्मों का क्षम करके केवल ज्ञान प्राप्त किया है उनको संयोगी केनली कहते हैं और उनके स्वरूप विशेष को संयोगी के वड़ी गुणास्थान कहते हैं।

१४ अयोगी केवली गुणस्थान—जो केवली भगवान योगों से रहित है वे अयोगी केवली कहे जाते हैं। उनके स्वरूप विशेष को अयोगी केवली गुण स्थात कहते हैं।

वेश्या ६ प्रकार की है। कृष्ण से शुक्ल तक क्रमश- गुण स्थानों के श्रम से अशुभ्र से शुद्ध अभी शुद्ध से शुद्ध तर होती जाती है। कषायें मन्द तो कर मोहनीय कर्म का क्षम कर के धन घाती कर्मों का नाश करके केवली वनता है १४ वें गुण स्थान में आत्मा जीवन मुनि होकर आत्म सिद्धि का प्राप्त करती है। यहाँ आत्मा परमात्माँ स्वरूप हो जाती है।

जैन धर्म

आज मैं जैन-धर्म के संबंध में कुछ कहने जा रहा हूं ।

जैन धर्म के शास्त्रीय विषयों का जहां तक तक सम्बन्ध है—जैन धर्म की परंपरा, जैन विचार मीमांसा और जैन आचार मीमांसा के बाद जैन धर्म अंतिम विषय है।

जैन धर्म की परम्परा में हमने वेद, उपनिषद, पुराण और मोहनजोदड़ों व हड़प्पा के ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा जैन धर्म की प्रारंभिक परम्परा बतलाई थी।

दूसरे दिन-प्रमाण नया निक्षेप इन तत्वमय द्वारा वस्तु के निर्णय करने के साधन बनाकर ६ द्रव्य और ९ तत्वों पर विचार करने की युक्ति बनाई थी। जिससे हम विचार कर सकें। अत: विचार मीमांसा पर कुछ कह गये।

कल नीति और चरित्र के सम्बन्ध में बोलने में चारित्र मीमांसा या जैन चार मीमांसा का विवेचन किया गया जिसमें आरम्भिक, नैष्ठिक और पूर्ण अणुव्रती श्रावक तथा महाव्रती मुनि के आचार का वर्णन किया गया।

जिसमें सामायिक, छेदों पर स्थापनीय, परिहार विशुद्ध, सूक्ष्म संपराय और यथा ख्याल चरित्र का वर्णन किया गया। और इसकी सिद्धि के लिए आत्म विकास का गुणस्थान का श्रम बताया गया। ये आत्मा के आत्मिक विकास को प्रकट करने वाले १४ स्थान हैं।

जैन धर्म की परम्परा, विचार और आचार के बाद हमें अब यह देखना है कि जैन धर्म क्या है। पहले जो कुछ कहा वह जैन धर्म की नींव थी। आज उस महल का नक्शा उपस्थित करने जा रहा हूं जिससे आप सोच सकें कि जैन धर्म का भवन

कैसा बना है ?

सामाजिकता के नाते जैन धर्म का महत्व विशेष नही है। जैन धर्म आध्यात्मिक दृष्टि कोण को मुख्य रखता है। संसार में मुख्य धर्म की धाराए ९ हैं। शुंग, ताओं, कन्फ्यूशियस पूर्व में पारसी, ईसाई और इस्लाम मध्य एशिया के और जैन वैदिक बौद्ध भारत के धर्मों की विचार धाराएं हैं।

इनमें कन्फ्यूशियस विचारधारा में कुछ आध्यात्मिकता है। पर वह समाज के विषय में भी मौन नहीं है। माओ राष्ट्र धर्म है। शुं जापान का धर्म है जो राजा में पूर्ण विश्वास करने का आदेश देता है। तीनों में मुक्ति की मान्यता अवश्य है पर मुक्ति सुन्दर विश्लेषण नहीं—जैन धर्म में उपलब्ध है।

पारसी ईसाई और इस्लाम अरब से मिलकर जैसे समय तक चले जाते हैं। पारसी धर्म का आदि प्रवर्तक जरथोल है पारसी धर्म में मनुष्य की नीति में ३ बातें मुख्य रूप से बताई गई हैं।

"तुमाग, हुवकता, तुकगा" याने सुमरण, सुवाक और सुकतई। हिन्दी में हम इस प्रकार कह सकते हैं। मन की शुद्धि, वचन की शुद्धि, कर्म या काया की शुद्धि।

इसमें आत्म विश्वास का क्या स्वरूप है यह परिलक्षित नहीं होगा।

ईसा ने ईसाई धर्म का प्रवर्तन किया। उसने मनुष्य को परमात्मा के अनुग्रह पर छोड़ दिया है। उसी की दया पर वेड़ा पार होता है। मनुष्य हजार पाप करके प्रभु की कृपा होने पर सव कुछ छूट जायगा। मनुष्य कर्म करें, उसका पुण्य देने वाला दूसरा कौन ? इस बात को जैन धर्म स्वीकार नहीं करना। उनका उनका कहना है—परमात्मा ने ६ दिन में दुनिया वनाई। सातवें

दिन थक जाने से परमात्मा ने आराम किया, वह आराम का दिन सनडे 'Sunday' था—अतः आज सनडे को आराम किया जाता है।

ईसाई लोग इस सृष्टि को ५००० वर्ष से पुरानी नहीं मानते। उनका कहना है—५००० वर्ष पूर्व कोई संस्कृति या सभ्यता थी ही नहीं।

जैन धर्म तो कोटा काटि सागर अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काए को स्वीकार करता है स्वर्ग नर्क कर्म के आधीन है परमात्मा के नहीं।

मुहम्मद साहब ने इस्लाम धर्म का प्ररूपण किया। उससे बहुत बातें अच्छी हैं, जिसे जैन धर्म भी स्वीकार करता है, पर, परमात्मा किसी के मन में जाकर पैगाम नहीं देता। हम अजानदि सुनते है। आत्मा में अन्तर की रोशनी पैदा होती है।

एक दिन सृष्टि से अंत में खुदा से दुरिशों मुर्दों को उठावेगा। और उनसे पूछा जायगा कि तुमने क्या अच्छा या बुरा काम किया, और फिर खुदा उनको प्रेरणा देगा।

मैं किसी भी धर्म से द्वेष नही रखता। मैं तो तमाम धर्मों; के प्रेम चाहता हूं। प्रेम करता हूं।

आए विडिजियस पालियामेंट में हम सब धर्मों की आच्छाइयाँ को लेकर एक सूत्रण में अवद्ध करेंगे। में केवल विशेफन्न की की बात कर रहा हूं।

जैन वैदिक और बौद्ध ये तीनों भारतीय धाराएं एक दूसरी से ऐसी मिल गई हैं। कि हम इनको एक दूसरी से पृथक कर ही नही सकते।

वैदिक धर्म में कोई खास एक दृष्टिकोण नही जिसके द्वारा

हम तुलना कर सकें । वह अहिंसा की उसक्षण को स्वीकार करना है । इसी प्रकार बौद्ध धर्म का भी हाल है ।

सम्पूर्ण विश्व को जैन धर्म की दो देन है, जिसे आज तक किसी धर्म ने नहीं दी थी । वह हैं—धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य ।

कृष्ण शुक्ल राशियाएं और ने भी मानी हैं, पर जो राशियाओं का छः प्रकार से आवान्तर भेदों सहित सूक्ष्म विवेचन जैन धर्म में मिलाया—ऐसा कहीं भी नहीं मिलेगा ।

कर्म और वृषाय का अति सूक्ष्म और अन्तन्त विसरन विवेचन जैन धर्म में हुआ है यह कोई अहंकार की वात नहीं है । वायु स्थिति का कथन है ।

परमाणुवाद और गणितानुवाद का इतना सूक्ष्म दिवेचन आज का विज्ञान भी नहीं कर सका है । हां उसके कथन को अब विज्ञान कुछ-कुछ मान्यता देने लगा है ।

उसके कथित पानी में और वनस्पति में जीवों की मान्यता का होना । उसने मान लिया । जैन धर्म के वताये धर्मात्मा काय और अवमर्तिमा काय की शक्ति को अब वैज्ञानिक मानने लगे है ।

उसके वताये हुए अहिंसा वाद को महात्मा गांधी ने मूर्तरूप दिया—और नेहरू ने संसार को वता दिया कि अहिंसा ही शांति का सर्वोत्तम उपाय है ।

जैन धर्म के सापेक्षवाद को विश्व का सबसे वड़ा-वैज्ञानिक आइन्साइन स्वीकार कर गया । यद्यपि इस सापेक्षवाद और परमाणुवाद का संदेश उसके सिर वंधाई पर आज से ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व भगवान महावीर ने इस की घोपणा डंके की चोट की थी ।

भगवती सूत्र में वर्णन किया गया है कि जो शब्द हम वोलते

हैं—तत्काल वह १४ राजूओं में टकराकर फिर सुनने वाले के कान में समझ आते हैं। यह आज के विद्युतशक्ति द्वारा चारित्र वायरलस से मिलान करने जैसी वात है ? आयु।

जैन धर्म अणुव्रत और महाव्रत रूप चारित्र धर्म से अनुप्राणित है उसमें मुनि के और श्रवक के पूरे-२ कर्तव्य निर्देशक है।

जैन धर्म सामाजिक या राष्ट्रीय धर्म न होने कारण उसमें यह तो नहीं वताया कि—विवाह कोई करना, शुभ के मुकाविल में वंदूक कैसे पकड़ना—पर विवाह करने पर या वंदूक पकड़ने पर यह गृहस्थ का कर्तव्य अणुप्राय द्वारा निश्चित अवश्य कराया है। वह स्वामी संतोष अणुप्राय देता है। और वल से जल्दी हिंसा का त्याग कराता है। साथ ही आध्यात्मिक साधना के साथ यदि अन्य वातों की आवश्यकता प्रतीत हो तो वे दूसरी जगह से होना भी पड़ता हैं। आज संसार का कोई देश स्वावलम्बी नही उसका एक दूसरे के सहयोग विना काम भी नही चलेगा। क्या आप अपनी जरूरत का सभी सामान स्वयं तैयार कर सकते हैं ? आपका काम पानी बिना नही चलाता, अग्नि विना नही चलता—और हवा विना नहीं चलाय। फिर आज समाज व्यवस्था में दूसरे मे सहयोग हो तो इसमें कुछ ही नाम थोड़े ही है।

जैन धर्म समाज व्यवस्था को न भी वचावे फिर भी उसमें समाज के कल्याण के मार्ग अवश्य ही प्रदर्शित है। जिन के आधार तक-दीन दुःखी की सेवा कर सकें। पीड़ित मानव समाज को सहयोग दे सकें। भीषण अकाल और भयंकर वाढ़ से पीड़ित जन मानस के लिये अपनी करुणा का स्रोत खोज सकें।

यदि कोई कहे कि यह व्यक्ति की आत्म स्वतन्त्रता का प्रश्न है तो फिर जैन धर्म क्या करेगा ?

जैन धर्म इतना थोथा हो गया है कि वह ऐसे समय में चुप्पी साध लेगा। यदि वह चुप्पी ही साध होता है तो फिर वह धर्म भी क्या धर्म रह सकेगा ?

जैन धर्म में परिग्रह त्याग का बड़ा महत्व बताया गया है। एक भाई के पास परिग्रह बहुत बढ़ गया है। वह उस परिग्रह का त्याग करना चाहता है—वह परिग्रह का त्याग किस प्रकार करे इसके लिये जैन धर्म क्या मार्ग दर्शन कराया है ? हमें विचार करना है।

उसे छोड़ दे ? कहां ? क्या कसाइयों को जाने दिया जाय उस परिग्रह को ? जो कतल खाने बनावे। सदुपयोग भी हो सकता होगा उसका।

दया, दीन, करुणा, रोगी सेवा और श्रमदान में उस पैसे को लगाना—उस परिग्रह का उपयोग है। आप नव प्रकार के पुण्य बनवाये हैं—उनमें उसे लगा सकते हैं यह शास्त्रीय आज्ञा है। भगवान महावीर की भाषा है। वैसा करने में आपको पुण्य बांधता है।

दिगम्बर श्वेताम्बर, स्थानक-वासी और तेरापंथी चारों—भाई भाई हैं। यदि सैद्धान्तिक मतभेद हो तो उसे आपस में ही मिटाकर जैनत्व का झण्डा विश्व के सामने एक होकर उठाया है।

परास्पर विवादेन,
वयं पंच शोत ले।
अन्यैः सह विवादेन,
वयं पंच शतोत्तरम् ॥

हमें मिल कर सोचना होगा जैन धर्म की आत्मा क्या देती है लोंका शाह को ५०० वर्ष हुए—आचार्य भिक्खू को २०० वर्ष हुए—परन्तु हजार-हजार, डेढ़-डेढ़ हजार वर्ष के पुरातन आचार्यों की विचार धाराएं साहित्य के रूप में आज उपस्थित करलें—आप उन पर विचार करिये ।

जैन धर्म एक दया ,पूर्ण धर्म है । नाम से वह विश्व विख्यात है । रुक्मणी देवी अरंडेल एक क्रूअल्टी बिल पेश करने जा रही है । अभी मध्य भारत में देवी देवताओं के नाम पर बलिदान प्रति बन्धक बिल पेश हुआ है । विधान-सभा के सदस्य आचार्य श्री तुलसी के सानिध्य में उपस्थित हुए थे—यह जानने के लिये कि जैन धर्म होने के नाते इस बिल के संबंध में आचार्य श्री का क्या मत है ।

आचार्य श्री ने जो मत दिया वह श्री मनोहर सिंह मेहता न्याय मंत्री ने विधान सभा के सामने प्रस्तुत किया कि आचार्य तुलसी का मत है कि यह बिल मोह के कारण पेश किया गया है ।

ध्यान दीजिये जैनाचार्य के इस निर्देश का समाज पर, और देश के साथ विश्व पर क्या असर पड़ेगा । आप ही बताइये क्या यह मोह है ? क्या कन्हैया दादा लाठी वाला के ये मूक पशु पक्षी कोई अपना मामा लगते हैं—जिसके कारण उनको मोह हो गया । ये संवाद मैं आपको इन्दौर समाचार के आज के पत्र में से पढ़ रहा हूं ।

आज पाश्चिमात्य देशों में भी करुणा की भावना जागी है । अमेरिका, इंग्लैंड और जर्मनी के देशों में भी प्राणी रक्षा और प्राणी की अनुकम्पा का आन्दोलन चल रहा है वहां हमारे भारत

में और वह भी जैनाचार्य जैसे जिम्मेदार पद पर स्थित महानुभाव ये विचार व्यक्त करें, यह जैन समाज के लिये शर्म और कलंक की बात है क्या इसी से जैन धर्म चमकेगा ? क्या इसमें जैन धर्म मोह मानता है ? प्राणी छुरी से कट रहे हैं—उससे बचाने में क्या पाप है ?

हमें देखना होगा कि—आचार्य तुलसी कह रहे हैं वह सत्य है—या भगवान महावीर कह गये वह सत्य है। दया और अनुकंपा लिये सैकड़ों शास्त्रीय प्रमाण दिये जा सकते हैं।

मैं कहता हूं—सब ग्रन्थ मतभेद के हो सकते हैं। पर तत्वार्थ सूत्र तो ऐसा ग्रन्थ है—जिसे चारों सम्प्रदायें समान रूप से प्रमाण रूप में स्वीकार करती है। इस पर बड़े-२ आचार्यों ने ठीक की है इनमें आप देखेंगे—वे क्या कहते हैं।

हरि विजय सूरि, कुन्द कुन्दाचार्य, चौथमल जी महाराज आदि ने हिंसा को वंद कराने के लिये पशुवुद्धि वंद कराई है शहंशाह अकवर से आजतक छोटे मोटे राजाओं ने हमारे उपदेश से पशुवुद्धि वंद कीं है। यह भी क्या मोह था। निर्णय करना है। मैं महावीर का हूं—तुम्हारी संप्रदाय का नहीं। मैं तेरीपंथी को भी प्रेम की दृष्टि से देखता हूं।

मैंने महावीर के नाते जैन धर्म स्वीकार किया है—मेरा सब धर्मो के प्रति आदर है हम उसे सहायता देना चाहते हैं—जो महावीर का भण्डा लेकर खड़े हैं। हमारा यदि सैद्धान्तिक मतभेद है तो हम उसे समझ समझकर दूर करेंगे।

मैं आप से निवेदन करूंगा कि यदि आप आचार्य गुजारी को निवेदन करके विचारों के आदान प्रदान का कोई सम्मेलन करेंगे तो मैं मेरी ओर से पूरा सहयोग दूंगा। और हमारी वात

चीत उच्च साकीय होगी।

मैं तो जैन धर्म का गौरव चाहता हूं।

आचार्य श्री सुभागजी अच्छे प्रचारक है यदि वे विशुद्ध जैन धर्म का प्रचार करें तो कितना उपकार हो।

जैन धर्म को यदि शरीर मान लिया जाय तो-मस्तक-मन-अनेकांत होगा। ज्ञान और दर्शन उसकी आंखें होंगी। समता हृदय होगी। श्रुत और चारित्र उसके चरण होंगे। जिसके आधार पर शरीर स्थित है इसके बिना धर्म रूप शरीर चल नहीं सकता। अंतर विज्ञान आत्म प्रवेश है।

मैं ऋषभ देव पार्श्वनाथ और महावीर की प्ररूपणा रखना रखना चाहता था। पाश्चात्य विद्वान क्या अभिमान रखते हैं यह बताना चाहता था पर समय बहुत हो गया है।

फिर भी पद्म पुराण, शिव-पुराण और महाभारत के द्वारा कुछ और धर्म का स्वरूप बताना आवश्यक है।

पद्म पुराण में राजा वेण का दर्शन आता है। राजा वेण, उस युग का सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न राज्य था। उसकी सभा में एक साधू आया है वह बिलकुल नंगधडंगा था। उसके पास एक मोर पीछी और कमण्डल था। उसने वेण को ललकारा ये राजा तू बता पाप के चक्कर में आया है। तू और धर्म मे आ।

वेण ने प्रश्न किया—तुम्हारे देव गुरु और धर्म क्या है ?

मुनि ने कहा—देवअरितंग और सिद्ध हैं। गुरु निर्ग्रंथ है दयामय धर्म है।

वेण ने पूछा तुम यह मानते हो ?

मुनि ने उत्तर दिया—उस दिगम्बर मुनि ने—कि ज्ञान शील तप और श्रद्धा द्वारा अंतर शुद्धि की जाती है। इच्छाओं

की आहुति दी जाती है। यही हमारा यज्ञ है।

वेण ने फिर पूछा—तुम श्राद्ध को मानते हो ?

सब मुनि ने कहा—हम किसी को यहां खिला देने से पाट के पेट में पहुंच जाने का तरीका स्वीकार नहीं करते। ब्राह्मण का पेट कोई लेटरबक्स तो नहीं जो वे परदेश में चिट्ठी रसा का काम कर सकें।

राजा वेण ने धर्म का स्वरूप पूछा।

उत्तर में मुनि ने कहा— ५ महाव्रत ५ सुमाते ६ गुप्ति ये १३ नियम हमारे धर्म के स्वरूप के हैं। बस दिगम्बर मुनि का मुख तेजस्वी था यह पद्म पुराण की बात हुई।

अब शिव पुराण की भी बात सुन लीजिये।

उसमें लिखा है—हुंण्डे वस्नस्य धारका:।

तीसरे महाभारत में उतुंग लाठीधारी हाथ में बस्म रखने वाले मुनि का वर्णन आया है धर्म लाभ वे बोलते हैं।

ये जैन मुनि के तीनों वेष पुराणों में पाये जाते हैं। श्रीमान भगवान को ८वीं ९वीं शताब्दी का माना जाता है।

अंधक वृष्णि लोग व्रात्य थे। जैन-धर्म को मानते थे। वेण राज जैन बन गया था।

उत्तराध्ययन सूत्र में चित्त ने जीव रक्षा का उपदेश दिया।

भगवान महावीर से नर्क गति टल सकने के उपाय पूछने पर राजा श्रेणिक को भगवान ने बताया कि यदि तू कालिक कसाई जो ५०० भैंसे रोज मारता है। उसकी हत्या ६ दिन के लिये भी रोक दे तो मरी नर्क गति टल सकती है। चेटी दासी से दान दिलादे तो नर्क गति टल सकती है। श्रेणिक ने दोनों किये। कसाई को कैद में बंद कर दिया और चेट से हाथ पर चाट बांध

कर दान दिलाया। पर उत्तर मन से वह न करा सका इसलिये—वह सफल न हो सका।

भगवान महावीर के यहाँ दया और दान दोनों का समर्थन किया है।

नर्क गति को रोकने में दया और दान को समर्थ कारण बताया है।

जाबालोपनिषद् में, अथर्ववेद में, महाभारत में, और भगवान ऋषभदेव से २४ तीर्थ कर तथा समाज आचार्यों में प्राणी रक्षा में धर्म बताया है। एक भी आचार्य ने खण्डन-नहीं किया।

भगवान ने भी गाय की करुणा गुजरात सौराष्ट्र से सारे भारत में फैली एक निश्चिय है।

जैन-धर्म की अन्तिम आदि अनेकांत धार्मिक आधार है। समता उसका हृदय है।

आप लोग जैन धर्म को समझकर विश्व के कल्याण में अग्रसर होंगे। इन कामन के साथ में आप को प्रेम का प्यांला देता हूं—लो पियो—ये मीठा प्रेम पाला।

कोई पियेगा किस्मत वाला॥

जैन संस्कृति और सभ्यता

संस्कृति शब्द की जितनी व्याख्यायें की गई है—उतनी किसी भी शब्द की नहीं की गई है। संस्कृति शब्द नये युग की देन है। जितना प्रचार आज इस का है—और इतने जितने भावों को लपेट रखा है—उसे देखकर आप हैरान हो जायेंगे।

इस्लाम संस्कृति, हिन्दू संस्कृति इंग्लिश संस्कृति—यहां तक कि प्रत्येक देश प्रांत और खानदान की तमाम सोसायटियों की

अपनी-अपनी संस्कृति है—यह दावा किया जाता है। संस्कृति के कितने वाल वच्चे हो गये हैं। कह नहीं सकते।

मानव संस्कृति १ है। भोगोलिक सामाजिक और राष्ट्रीय परिस्थिति के कारण कुछ संस्कृतियां भिन्न देशों के नाम से कही जाती हैं। उनमें हमारे भारत की भी एक गौरव मयी संस्कृति भारतीय संस्कृति है।

इतिहास, पुराण, सभ्यता आदि संस्कार के जाते हमारे हृदय पर जो संस्कार—जो भाव अंकित होते हैं—उन्हें हम संस्कृति कहते हैं।

सांस्कृतिक खोज में लगे हुये कुछ विद्वान ग्रीस और रोमन संस्कृति को प्रथम स्थान देते हैं। पर, आर्य-संस्कृति—भारतीय संस्कृति कोई कम प्राचीन नहीं है। यदि न्याय की दृष्टि से देखा जाय और मोहन जोदड़ों और हड़प्पा के जो प्रमाण प्राप्त हुए हैं उनके आधार से निश्चिय किया जाय तो भारतीय संस्कृति का स्थान सवसे ज्यादा प्राचीन तक माना जायगा।

'संस्कृति का मतलव हमारे विचार हैं। शिक्षा, रतन, सहन, साहित्य व्यवपार आदि से जो प्राप्त हो नहीं।

हिन्दुस्तान में पैदा होते ही संस्कृति उसे विरासत में मिलती है। वह दूध जल और आयु के साथ पीं जाती है।

भारत में उत्पन्न होने वाले महापुरुषों में एक तारना जो आप को दृष्टि गोचर होती है—वह तो इस संस्कृति की देन। आप रवीन्द्र, महात्मा गांधी, शंकराचार्य महावीर, राम कृष्ण उसी ऋषम देव तक चले जाइये। इन सव अंदर एक परम्परा खड़ी है—

इनमें कोई मारने वाला पुरुष महापुरुष नहीं वना। परन्तु

जिसका आदर्श त्याग, करुणा, सेवा या बलिदान हो जाने की आदर्श भावना से ओत-प्रोत है—वही मता पुरुष कहलाया है।

हमारे भारत के किसी भी राजा ने दूसरे राज्य पर कब्जा करने के लिये आक्रमण किया हो ऐसा उदाहरण आप नहीं बता सकते। भारत ने किसी देश पर चढ़ाई नही की—धर्म इस अवश्य भेजे हैं। जो राजा स्वार्थ के लिये राज्य करता था—उसे महा-पुरुष भी नहीं कहा गया।

जिसने जीवत भोग दिया। जिसने देश को सम्बन्ध बढाने का प्रयत्न किया—जिसने त्याग का आदर्श मार्ग प्रास्तुत किया—उसी को हमारी परिभाषा में महापुरुष कहा गया है।

यूरोप व भारत में—चर्चिल और पं० नेहरू का नाम समान रूप से आते हैं। दोनों प्रधान मंत्री के नाते प्रसिद्ध हैं। इनमें चर्चिल अभी रिटायर्ड हो गये है। क्या आप नेहरू का सम्मान और उनसे प्रेम इसलिये करते हो कि वह प्रधान मंत्री हैं।

हो सकता है—वैधानिकता के नाते आप सम्मान कर हैं—पर प्रेम तो उनके त्याग को ही करते हो न?

गांधी को प्रणाम क्यों करते हो। इसी लिये नही कि वे निवृत्ति और शांति के अवतार थे।

आज बहुत से बहुत से लीडर है—जो शराब पीते हैं, व्यभिचार करते है—और लीडरी भी करते हैं—पर, आपकी श्रद्धा उनके प्रति बिल कुल नहीं है।

क्यों है आपकी श्रद्धा महानता मालवीय और लोक-मान्य तिलक के प्रति। क्या आप के मस्तक उनके नाम आते ही झुक जाते हैं? इसका कारण है—आप त्याग और तपस्या के पुजारी है। यह आप की संस्कृति है।

विम्बसार अशोक और चन्द्र गुप्त के नाम पर हृदय—हमारा हृदय गदगद हो जाता है—क्यों ? अन्य शासक भी तो हुए हैं। पर उनमें त्याग कहां था ?

त्याग से व्यक्त भोग को धर्म और त्याग से शासित भोग को अति कहा गया है।

कोई व्यक्ति यदि विवाह करले, वाल वच्चे पैदा करे, तव क्या आप उस धर्म गेरु को प्रणाम करेंगे। नहीं क्योंकि आप ब्रह्मचारी कोगुरु मानते हैं लेकिन पादरी फकीर और दस्तूर शादी करते हैं। वच्चे वच्ची पैदा करते हैं—फिर भी गुरु कहलाते हैं। पारसियों के धर्म गुरु दस्तूर को तो शादी करना आवश्यक है।

आप में जो सस्कार हों—उस में यह है कि जो साधना करे वही साधु है।

एक संस्कृति हमारी त्याग वैराग्य वाले को सम्मान देने की है। भोग और पैसा रखने वाले की नहीं।

दूसरी हमारी संस्कृति है कि किसी राजा ने अपने स्वार्थ के लिये किसी राजा को मारा हो—ऐसे राजा को महापुरुष नहीं कहा गया।

हमारे नेता हृदय परिवर्तन करना चाहते हैं। पंचशील के सिद्धांत से सव देशों को मिलाना चाहते हैं—आंतकित करके उन पर कब्जा जमाना नहीं। यह है हमारी संस्कृति।

प्रेम वढ़ाना ही संस्कृति का आधार है। इसी आधार से मैं वर्गीकरण करने जा रहा हूं। हम संस्कृति के निर्माण में जैन धर्म ने क्या योगदान दिया है—मैं आज इसी विषय पर मैं वात करने जा रहा हूं।

हमारी संस्कृति एक हैं। जैन वौद्ध और वैदिक सज्जनों के

बलिदान से हमारी संस्कृति बनी है।

जैन सम्कृति का अर्थ है—जैन साधु और श्रावक द्वारा दिया गया योगदान।

भारत में अहिंसा का स्वर जैन धर्म की देन है।

विशुद्ध यौगिक हिंसा— जिनके यज्ञ कुण्ड रक्त रंजिस रहते थे—उसी प्रकार जिस प्रकार तहूदियों के रहते हैं—उसे रक्त रंजित होने से बचाने का श्रेय जैन धर्म को है पशुओं का बलिदान करके मांस के टुकड़ों द्वारा हवन होता था—एक जमाना था— मुसलमानों की तरह ही हमारे यहां के आर्य भाई जिनमें चावकि, शान्त आदि दुर्गा या काली के नाम पर बलिदान करके, मांस खा जाते थे। मुसलमानों की कुर्बानी और देवी की बलि एक थी उनको अतिसंक बनाने का श्रेय जैन धर्म की है।

ब्रह्मण धारा से प्रभावित राजाओं की चाल थी—

कण्वानो विश्वमार्यम्

इस राज शासन का नियमन श्रमणधारा ने किया है। नीदियय, सीरियन, शक, हूण व योरोनियनों से चाहे हमने सीखा है पर ब्राह्मण धारा से प्रभावित राजा, राज्य शासन द्वारा और यस की परम्परा से स्वर्ग जाने की कामना करते थे जबकि श्रमणधारा के महात्मा लोग अपनी आजीविका कम से कम में चलकर त्याग का आदर्श रखकर, राजपाट को लेकर मारकर— मुक्ति की कामना करते थे। कम से कम पापी पतन कर गुजर करना चाहते थे।

उस राज्य शासन पर अंकुश लगाने का त्माग को मूर्त रूप देने का श्रेय श्रमणधारा को है।

राष्ट्र के प्रति जागरूक रहने की देन ब्राह्मणधारा की है।

श्रमण संस्कृति त्याग से गिर भी गई। बौद्ध और जैन कन्धे से कन्धा भिड़ा कर प्रचार करते थे। लेकिन बाद में बौद्ध राज्य लिप्सा और भोगों थे फंस गये। महायान सम्प्रदाय में जाग की प्रतिष्ठा हुई। जब से वासना और भोग में उलझकर साधना से भ्रष्ट बौद्ध विवाए करके बाल बच्चे वाले हो गये।

जबकि कौल, श्याम, शक्ति व नास्तिक स्त्री बिना साधना ही नहीं कर सकते।

जैन धर्म में पूर्ण ब्रह्मचर्य का आदर्श रहा है। यहां साधना के लिये—स्त्री और पुरुष दोनों स्वतन्त्र है। पुरुष के बिना स्त्री और स्त्री के बिना पुरुष साधना करने में स्वतन्त्र है।

यह श्रमण परम्परा में जैन धर्म की सबसे बड़ी संस्कृति को देन है।

जैन इतिहास श्रमण का इतिहास है।

स्वाभाविक मैथुनेच्छा, खान-पान, भोग विलास, आदि पर श्रमणों ने नियन्त्रण किया है।

एक दो नहीं—हजारों आदमियों को खड़ा करके पूछिये—आपकी इच्छा क्या है ?

उत्तर मिलेगा—जर जमीन और जोरू की चाह। धन वैभव और अधिकार की कामना। पर, जैन साधु को उसकी इच्छा पूछी जाय तो वह कहेगा—मैं सब भोग विलास, धन दौलत पुत्र, परिवार त्याग कर अर्थात् मुझे कोई इच्छा नहीं है।

सब कुछ होते हुए भी अकिंचन बनने की परम्परा जो धर्म की सबसे बड़ी देन है। महावीर ने एक लाख की कौड़ी की तरह छोड़ने का मार्ग बनाया और त्याग, वैराग्य, लोक, परलोक की समझ जैन श्रमणों ही। वह चन्द्र गुप्त छोटा सम्राट था। जो

भद्रबाहु का शिष्य बनकर चन्द्र गिरि पर बैठ साधना करने लगा। विचारों को बदल देना संस्कृति-परम्परा का काम है।

साधु के कहने से आप भोजन छोड़ते हो—पर, अहसान नहीं करते। साधु सब कुछ छोड़ता है—पर, किसी पर अहसान नहीं करता—वह परमात्मा या मुक्ति के लिये करता है। नानक, तुलसीदास, रैदास सब ने सब कुछ छोड़ा—पर किसी ने भी अहसान प्रदर्शित नहीं किया।

जैन श्रावक राज्य भी करते थे। फिर भी धर्म का पालन वे यथाविधि करते थे।

अणहिल पुर का राजा भीमसी किसी कार्यवश दक्षिण में गया हुआ था—मुसलमानों ने २५ हजार सेना लेकर आक्रमण कर दिया। रानी अकेली थी। क्या करे उसके समझ में नहीं आ रहा था। उसने सब सदस्यों को बुलाया।

रानी ने एलान किया कि जो २५ हजार सेना से ५ हजार सेना लेकर मुकाबला करके देश को बचा सके वह वीर यह बीड़ा उठाले। किसी की ताकत नहीं हुई। कौन अपने सिर कलंक का टीका लगावे।

जैन श्रावक शास्त्रों का स्वाध्याय करता है। प्रतिदिन प्रतिक्रमण करके पृथ्वीकाय अपकाय आदि के हिंसा के दोष से मुक्ति की कामना करता है। उस श्रावक ने देश रक्षा का बीड़ा उठाया।

हाथी पर बैठ कर वह प्रतिक्रमण करता है। किसी भी जीव को मन, वचन काया के द्वारा सताया हो तो मिथ्या दुष्कृत हो। एक गुप्तचर सुन कर रानी के पास गया। बोला—जो व्यक्ति छोटे बड़े कीड़े मकोड़े के लिये क्षमा याचना कर रहा है वह क्या

देश रक्षा करेगा।

पर रानी ने कहा कि हम जिसके हाथ में दे चुकी हैं—उस को बदलना नहीं चाहती।

श्रावक ने रात को १० बजे सेनापति को बुलाया। आक्रमण करने की युक्तियाँ बताई। मुसलमान लोग डेरे डाल कर, शराब पीये बेफिक्री से सोये पड़े थे। इधर से आक्रमण हो गया। धुआँ धार लड़ाई हुई। डेरों में आग लगादी गई। हजारों का खून खच्चर हुआ। कुछ को गिरफ्तार कर लिया गया, कुछ भाग गये।

विजय दुंदुभी बजादी गई। हर्ष का थाह न था। दूसरे दिन राज दरबार लगा। श्रावक को बधाइयां दी गईं।

राणी ने पुछा। सेठ मुझे एक शंका है।

सेठ—माँ तुम चाहो पूछ सकती हैं : तुम्हें पूरा अधिकार है।

रानी—अरे सेठ तुम हाथी के होदे पर बैठ कर एकेन्द्रिय आदि की हिंसा हुई हो तो प्रायश्चित ले रहे थे। कि २५ हजार सेना का खून खच्चर करके तुमने यह खिलवाड़ क्यों किया। क्या यह धोखा नहीं ? और धोखा देना क्या पाप नहीं ?

उस श्रावक ने कहा वह हमारा संस्कृतिक प्रति क्रमण था जो मैं हाथी के होदे पर बैठ कर कह रहा था। उसका सम्बन्ध मेरे जीव से था। यदि तुम कहो कि १ कीड़ी को मार दो और बदले में राज्य ले लो—तो मैं यह हर्गिज करने को तैयार नहीं होऊंगा।

२५ हजार सेना को मारने का मेरा उद्देश्य नहीं था। मेरा तो एक काम उद्देश्य था अपने देश को बचाने के लिये कारियों से मुकाबिला करना। इस में यदि कोई मारा गया तो इसमें मेरा दोष नहीं। मेरा देश धर्म भी इसमें भी पाप लगा

है—पर वह सामुदायिक पाप था रक्षा की भावना से मैं गय था। मारने की भावना से नहीं। जैन धर्म ने हमें यह दे दी है।

अपनी रक्षा के लिये किसी प्राणी को न मारो। देश रक्ष में यदि किसी के प्राण जाते हैं तो यह हमारी जिम्मेवारं नहीं है।

आपके उज्जैन के कालिका चार्य और गर्द मिल का इतिहास आपको मालूम है। कलिका चार्य की साद्वी बहन सरस्वती को गर्द विद्वान घर में डाल दिया। कालिक चार्य को पता चला तो उन्होंने श्रावकों और सामनों को दूत बनाकर भेजा पर कौन सुनाया था उनकी बात के आचार्य पद को छोड़ कर कालिका चार्य अरब में जाते हैं ईरन और ईराक में जाते हैं अपनी कार्य कुशलता से सेनापति बन जाते हैं और उजैन पर आक्रमण करते हैं। राजा को परास्त करके सरस्वती को मुक्त करते है।

क्या आप सोच सकते हैं कि १ बहन की रक्षा के लिये इतनी खून खराबी क्यों की घर बार छोड़ कर मुनि बन कर कालिकाचार्य इतना बड़ा पाप क्यों किया ?

उत्तर है उन्होंने बहन को छुड़ाने के लिए नहीं परन्तु सतीत्व की रक्षा के लिये यह सब कुछ किया यदि ऐसा नहीं किया जाता तो सतीत्व संकर में पड़ जाता और बदमाशों के होसले बढ़ जाते।

श्रमण धारा की संस्कृति के लिये सतीत्व की रक्षा करना, अत्याचार को कुंठित करना, यह हिंसा को रोकना है। कल क्या अधर्म फैल जाय—कौन कह सकता है।

धर्म की रक्षाकरना हमारा प्रथम कर्तव्य है।

विष्णु कुमार ने ३ डंग में राजा को नष्ट कर दिया। कालिका चार्य ने सतीत्व की रक्षा की।

धर्म रक्षा में अनुग्रह और निग्रह दोनों से काम लेना पड़ता है। दिल वदलने से ही काम चलाने वाला नहीं दिल वदलना भी एक उपाय हो सकता है। पर निग्रह करना भी अहिंसा है।

एक बच्चा अफीम की डली खा रहा है—आप उससे लेना चाहते हैं और वह नहीं देता—ऐसी स्थिति में उसके एक थप्पड़ मार कर भी उससे छीन लेने में आप कोई अधर्म नहीं कर रहे हैं। न इसे हिंसा ही कहा जा सकता।

आचार्य कुन्द कुन्द, समंतभद्र हेमचन्द्र आदि सब की यही परम्परा है।

श्रावकों को चाहिये कि जहाँ धर्म की रक्षा का प्रश्न हो वहाँ प्राणों की वाजी लगा दें।

कुण्ड को दिया श्रावक के सामने आजीवक गोशालक का भक्त देव महावीर के धर्म का अपलाप करने लगा--तव उस कुण्ड को दिया, श्रावक ने भी उसका मुंह तोड़ उत्तर दिया। भगवान महावीर ने उसकी प्रशंसा की।

कवूतर तक की रक्षा के लिये प्राणों की आहुति देने का इतिहास आपके सामने है।

कहानी को आदर्श के रूप में मान ली जाये तो जीवन देकर जीव वचाने की वात सिद्ध होती है।

अरिष्ट ने भी पार्श्वनाथ महावीर, भद्रवाहु, स्थूलिभद्र गुण सुन्दर, कुन्द कुन्द, समंतभद्र, अभय देव सूरि, हेमचन्द्र, आदि सवके सब अपने लिये नहीं, दूसरों के लिये जीये हैं।

हीर विजय सूरि का उदाहरण हम भुला नहीं सकते वे

अकवर के गुरु थे। अगर वे अपने मान सम्मान के लिये
चाहते तो उनको मिलने में कुछ कमी न रहती। यदि वे जैनि
को कुछ दिलाना चाहते तो भी मिल सकता था। पर उन्ह
क्या मांगा अकवर से मालूम है।

उन्होने मांगा कि पशुवध रोक दिया जाय। पर्व दिनों
कतलखाने बन्द रखे जायें जिनका पालन आज तक होता
रहा है।

पशुवलि रोकने के लिए—पाला बकरा मुर्गा आदि के ब
दान को रोकने का जहाँ भी प्रश्न उठा, वहां दिगम्बर श्वेताम्ब
और स्थानकवासी एक आवाज में बोले है। क्यों चौथमल
क्या, शान्ति सागर जी, क्या वल्लभ विजय जी, क्या राम विज
जी। साम्प्रदायिक कट्टरता चाहे कैसी ही रही हो। पशुव
रोकने में एक रहे हैं।

काश्मीर में गोहत्या बन्द करवाई। एक जैन साधु वह
भावना क्रिमटे कर रहा है ये है हमारी संस्कृति में योगदान।

आचार्य श्री तुलसी ने कहा पशुवध को बन्द कराने में
दया है न पुण्य यह मोह से प्राप्त है। क्या कहूँ—इसके लि
हमारी सांस्कृतिक परम्परा तो यह नहीं है।

मेरा तो आज का विषय संस्कृति का है। इसके बाद सभ्यत
पर भी कहना है।

भूवलाय, तिलोय पवयण, गोमट्ट सार, ३२ और ४
आगम, जैन ग्रन्थ और साहित्य सब व्यर्थ हो जायेंगे यदि हमारी
संस्कृति में से बलिदान या पशुवध रोकने को मोह बात कह
निकाल दिया जावेगा।

वैष्णव शैव आदि में जो अहिंसा की प्रतिष्ठा हुई है और

इसकी अक्षुण्ण परम्परा चल रही है उसका श्रेय हमारी संस्कृति को है। आज सारा देश विनोवा, राधा कृष्णन थियोसोफिकल सोसायटी आदि सब हमारी संस्कृति को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं।

मेक्स मूडर हर्मन जेकोकी का साहित्य जब तक रहेगा, जैन धर्म की विचारधारा रहेगी, तुम २५ लाख जैन जाति जैन धर्म को मानो या न मानो—जैन धर्म की विचारधारा अवश्य रहेगी। तुम मानोगे तो तुम्हारा उद्धार है।

सभ्यता की बात करूं। यह भी प्रश्न लम्बा है। सभ्यता के इतिहास में देव, पितृ अतिथि आदि को देव पुरुष माना जाता है। परन्तु जैन सभ्यता में इससे भी ज्यादा विशेपता है—

जैन साधु जहाँ जाता है उसे अनाथ फकीर या नंगा मूखा नहीं माना जाता। उसे गुरु समझा जाता है। उस देने में पुण्य नहीं धर्म होता है। उसके सामने दान का गरूर नहीं रहता, उसका सिर श्रद्धा से झुक जाता है। वह गुरु वुद्धि से दान देता है।

अपाहिज, अनाथ, भिखमंगे यदि आते हैं तो उन्हें दया के पात्र समझा जाता है। उनके दिये करुणा का लगते वताया जाता है। तन मन धन से उनकी सेवा का विधान है और उसका प्रतिफल 'पुण्य' है।

अपने साधर्मी वन्धु को अपना भाई समझो। उनकी सेवा साधर्मी वात्सल्य है।

राष्ट्र के लिये सव कुछ न्यौछावर करदो। उसमें पुण्य की भावना काम करती है धर्म गुरु को देना निर्जरा है।

माता-पिता की सेवा में नम्रता कोमलता, मार्दवता, आदि

इच्छा निरोध के कारण पुण्य का काम है—

पति पत्नी की सभ्यता जानना चाहते है आप महारानी मिशल १४ स्वप्न देखती है। स्वप्न आने पर वह पति के महल में आती है। पति उसको भद्रासन देता है। आजकल की तरह एक पलग और एक ही कमरे का उपयोग नही होता था। यह है पति पत्नी का पारस्परिक व्यवहार।

राजा की सभ्यता सुनना चाहते हैं आप ?

महाराजा श्रेणिक भगवान महावीर के दर्शन को जाते हैं। भगवान का स्थान आते ही राजसी आभूषण उतार दिये जाते हैं। धर्म गुरु के पास राजसी-अभियान सूचक ठाट से नही जाना।

श्रावक की सभ्यता भी सुन लीजिये। शंख और पोखली श्रावकों का वर्णन आता है। साथी के मन में खेद होता है तो क्षमा याचना कर दी जाती है।

गुरु शिष्य की सभ्यता भी कुछ कम गौरव की नही। गौतम गुरु आनन्द श्रावक शिष्य से क्षमा याचना के दिये जाते है।

यहां पद प्रतिष्ठा से कोई सम्बन्ध नही त्याग का महत्व है।

दो धर्माचार्यों की सभ्यता के लिये कैसी गौतम संवाद पढ़ जाइये। परस्पर विचार भिन्न होते हुये भी हृदय की भिन्नता नहीं है।

पुत्र की सभ्यता चाहें तो महावीर की जीवन देखो। लोग समझते है बच्चों को मूंडने से हीरे निकलेंगे। महावीर ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक माता पिता जीवित है—दीक्षा नही लगा।

महावीर और बुद्ध में अन्तर है। बुद्ध दुःख से घबराते थे।

दुःख के नाम से दुनिया ने जो आंसू बहाये वे समुद्र के पानी से ज्यादा है।

वुद्ध चोरी से घर से निकल जाते हैं। जवकि महावीर रसाता तक अपने भाई भौजाई को समझा कर दीक्षित होते हैं सव रास्ता सीधा करके निकलते हैं।

आज के लोग मां वाप का कहना नहीं मानते। मत मानों। पर तुम्हारी सभ्यता यह है कि पुत्र प्रतिदिन माता पिता को नमस्कार करता था।

आशाशात माता को प्रणाम करने जाता है—वह उसे फटकारती है कि निकल जा कायर—जिसने शरणागत उदय को शरण नहीं दी।

स्वयं कृष्ण देवकी कोप्रणाम करते थे।

राजा प्रदेशी ने अपंगों अनाथों की सेवा के लिये ७०० गांव दान कर दिये थे।

हमारी सभ्यता में त्याग और विनय को सव से ऊंचा स्थान दिया गया है।

विनय के लिए कुत्ते को भी नमस्कार किया जाय कष्ट यह शंका खड़ी हुई आज उसका उत्तर सुन लीजिये।

भोजन जलेवी से भरे पेट वाले को खिलाने का पुण्य नहीं है न पानी ये पखाए की तरह भरे पेट में पानी पिलाने का ही नाम पुण्य है। वल्कि भूखे और प्यासे को भोजन या पानी देने का पुण्य कहा गया है। इसी प्रकार नमस्कार थी उसी को किया जाय हां जो नमस्कार के पात्र हो उन गुणिजन को प्रणाम करना पुण्य है कुत्ते की वफादारी के गुण को सीखना ही उस पर अनुकम्पा वुद्धि से खिलाना पिलाना हीं कुत्ते को नमस्कार करना हैं और यदि तुम कुत्ते को नमस्कार करने में ही पुण्य मानो तो करो—वह तुम्हारी मरजी है।

अंत में हमारी सभ्यता का मूल सूत्र जो किसके साथ क्या व्यवहार करना चाहिये। वह आपके सामने रखकर आज का वक्तव्य समाप्त करता हूं। वह सूत्र है:—

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदम्,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम्।
माद्यस्थ भावं विपरीत वृतौ,
सदा: ममात्मा विदधातु देव ॥

जिसे हम यों कह दें:—

मैत्री भाव जगत में मेरा,
सब जीवों से नित्य रहे।
दीन दुखी जीवों पर मेरे,
उर से करुणा स्रात वहे।
दुर्जन क्रूर कुमार्ग रातों पर,
क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूं मैं उन पर,
ऐसी परिणाति हो जावे ॥

जैन-साहित्य

आज मैं हमारे जैन साहित्य के संबंध में कहने जा रहा हूं। जैन साहित्य का ध्येय है:—

पक्षपातो नमे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु,
युक्ति द्वचनं यस्य, तस्य कार्यं परिग्रहः ॥

जिन लोगों में कट्टरता है—वे अनेकांत मे दूर हैं। परिपूर्ण सत्ता आत्मा की हैं। आत्म ज्ञान ही अंतिम तथ्य है कोई अन्तिम तथ्य को पहचाने यही साहित्य का उद्देश्य है।

रागद्वेष होने से साहित्य का अवरोहण, आरोहण उत्थान और उन्नयन हुआ है जैन साहित्य के संबंध में मात्र संकेत ही दिया जा सकेगा। विस्तार करने जितना तो सम्भव है भी नहीं।

साहित्य मानस का प्रतिबिम्ब है। आत्मा में अनंत ज्ञान है मन में अनन्त शक्ति है। जिन महापुरुषों ने आत्मोपलब्धि के बाद उस अनुभव को वाणी द्वारा उद्बोन किया—उसे साहित्य कहा जाता है। और वे महापुरुष तीर्थंकर।

तीर्थंकर देव में वाणी द्वारा देशना दी। गणधरों ने उसे या रखा और आचार्यों ने ग्रन्थित किया। वर्षों बाद उस साहित्य को लिपि बद्ध करने का उपयुत हुआ। ७०० वर्ष बाद वट्टमीपुर में देवर्धिक्षम श्रमण ने में चौथी बार ५०० आचार्यों का सम्मेलन करके शास्त्रों को लिपि बद्ध किया।

भगवान महावीर के २१० वर्ष बाद खारवेल के राजा के समय में सब से पहली याचना हुई थी। जो जो ज्ञान राशि हरि-हन, पूर्व धपश्रग केवली द्वारा प्राप्त हुई—उसके लिये आचार्यों का ख्याल आया कि किन-२ प्रदेशों में मुनियों के भ्रमण के कारण ज्ञान बिखर गया है—इस लिये ज्ञान सुन कर भूल दूर कर दी जाय। जो ज्ञान भगवान महावीर से प्राप्त हुआ—वह उसी रूप में याद न रह सका। बुद्धि और धारण शक्ति पर सब कुछ निर्भर है।

सब लोग ज्ञान को अपने अपने ढंग याद रखते हैं। आरोहण अवरोहण अन्तिम अर्थ—आदि में असार तो, आय ही है। यदि आप में से सबको नवकार मंत्र पूछा तो सबके सब एक स्वर से नहीं बोलेंगे। शैली बदलती जायगी।

इसलिये खारवेल के राज्य के समय पहिली संगीतिका वा

वाचन तुकर वह कलिंग में हुई थी। दूसरी नागार्जुन कर तीसरी·········और चौथी वल्लभी पुर में देवर्धि क्षमा श्रमण के प्रयत्न से ६८० से ६६३ तेरह वर्ष के प्रयत्न से हुई थी ५०० आचार्यों ने शास्त्रों को प्रतिपादन किया। उन्हें हम आगम कहते हैं। नन्दी सूत्र उन आगम का सूचीपत्र या केटलाग है। शास्त्रों को गिन गिन कर सूची बना दी कि इसमें कोई विभेद न कर सके। न शब्द जाए या निकाल सके। लेकिन यह बहुत देर से प्रवृत्ति हुई। परिणाम स्वरूप आज हमारे साहित्य की जो दशा हो रही है वह न होती।

कुरान के प्रति मोहम्मद और इब्राहीम के मन में खयाल आया। कुछ पारे, कलाम भी सिपारो में फर्क आया। कुछ कलाम मोहम्मद साहब ने रिजेक्ट कर दिये उस समय कुरान की प्रतियां इकट्ठी की गई। कुल ७०० प्रतियां मिल सकीं। जो सबसे अच्छी व पूर्ण थी उससे रखकर शेष जला दी गई।

१–१ नकल सबको दे दी गई। उनका यह मत साहित्य इतना मजबूत हो गया कि मुसलमानों में कई संप्रदायें है एक दूसरे की कट्टर शत्रु भी हैं—पर कुरान के सम्बन्ध में किसी के मन भेद नहीं रहा।

खेद है कि जैन सहित्य एक होकर न रह सका। देव द्धिक्षमा श्रवण के समय से दो भेद हो गये। २२० वर्ष के बाद जो जिन कल्पी दिगम्बर परम्परा निकाली—उसने अपना साहित्य अलग ही बनाया उन्होंने षट् खण्डन योग और चार अनुयोग से आचार्यों के साहित्य को स्वीकार किया।

श्वेताम्बरो ने ११ अंग १२ उपांग को मान कर काम सूत्र आदि को स्वीकार किया श्वेताम्बर २४ या ८४ आगमों के

भगवान की वाणी तो स्वीकार करते हैं दिगम्बर लोग भी ११ अंग १२ उपांग मानते है पर वे कहते हैं कि ये विलुप्त हो गय। कुछ मात्रा में उपलब्ध है—वह विभिन्न साहित्य अलग अलग हो गया।

जैन साहित्य की भाषा—श्वेताम्बर साहित्य अर्द्ध मागधी पैशायिक, मूलिका पैशायिक, में वहुत ग्रंथ है।

जैन साहित्य २०० भाषाओं में मिल सकता है तिब्बत तमा जापानी दर्दी, भूटानी, नेपाली ब्राह्मी, आदि में कोई न कोई साहित्य अवश्य मिल जायगा। अभी तक जैन साहित्य की २०० भाषाएं निक्षिपन की जा चुकी है।

जर्मन में महा पन्नवरणा का अनुवाद हो चुका है रिमल इंग्लिश में कोई ग्रंथ मेरे ध्यान में नहीं।

पथा गुरु पश्चिम में गये थे। वे ओल्ड टोप भेंट के सत्य कुछ साहित्य दे गये हैं। पर जैन नाम प्राचीन नहीं है। प्राचीन नाम निर्ग्रंथ है। पापी में भी जैन साहित्य की वहुलता है।

मूल साहित्य अर्द्धय गधी अर्थात् मागधी और शोर सेनी में तो तलेगू दिगम्बर साहित्य कन्नड़ी तामिलो और मलयालम में हैं। लाखों नहीं करोड़ों ग्रंथ मौजूद हैं। इतनी जैन साहित्य का राशि विसार है कि आप देखकर हैरान हो जायेंगे।

अर्द्धभावाथी का इतिहास भी प्राचींन है भगवान महावीर के बाद—जब देहली से का सम्राट पृथ्वीराज हुवा उसके ५०० वर्ष पूर्व तक देश की मात्र भाषा प्राकृत रही है। ७ वीं से १३वीं सदी तक की भाषा अपभ्रंश रही है यदि उस समय के जैन और बौद्ध साहित्य तो निकाल दिया जाय तो १५०० वर्ष का इतिहास और विचार प्राप्त हो जायेंगे।

जैन साहित्यक कुन्द कुन्द समन्त भद्र सिद्ध सेन दिव्य का आदि आचार्यों ने भण्डार भर दिया।

चूलिका पैशायिक भाषा का जीवन दान जैन धर्म ने दिया।

तामिल तेलगू कन्नड भाषाओं को जीवन देने वाला भी जैन धर्म है। दक्षिण में दिगम्बर आचार्यों ने साहित्य निर्माण किया।

भिपुल, गोमट्ट सार, धवल, महाभूवलम, संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य है। वह ग्रंथ संसार की ७६० भाषाओं में पढ़ा जा सकता है अंक में लिखी गई भाषा—भिन्न-भिन्न भाषा मे पढ़ सकते हैं। भारत सरकार द्वारा नियुक्त विद्वान १५ भाषा में तो इस ग्रन्थ को पढ़ चुके है। इस ग्रन्थ में ७५ हजार श्लोक है। परमाणु बम्ब, महाभरण, उपनिषद, जैन शास्त्र आदि १-५-७ आदि के अंक तुमसे पढ़ने से प्रकट होते हैं। क्या दिमाग था। उस जैनाचार्य की ७६० भाषाओं में भिन्न-भिन्न धार्मिक ग्रन्थ दिये।

वह जैनाचार्य था। हमारा जैन समाज अभी सोया पड़ा है। वैश्य समाज के हाथ मे जो आ गया। यदि यह किसी विचारक या वैज्ञानिक के हाथ में आया होता तो यह विचार करके सारे विश्व को बांट देता। आप लोग धर्म को समझते ही नहीं। सम्प्रदायिक झगड़ों में पड़े रहना है।

ज्ञान के प्रति तुम्हारी जागरुकता है यह जैन साहित्य के सम्बन्ध में प्रवचन का लक्ष्य है।

डॉ० बर्नार्डशा ने कहा था यदि भगवान मुझे अलग जन्म दे और वह मनुष्य का हो तो वह जैन कुल में दे।

बर्नार्डशा भगवान महावीर का जीवन लिखना चाहते थे। उन्हें दिगम्बरों, श्वेताम्बरों और स्थानकवासियों के ——

ढंग से भेजा। वर्नार्डशा ने कहा आप लोग अपने महापुरुष के जीवन के सम्बन्ध में भी एक मत नहीं।

भगवान ने शादी की थी या नहीं की थी। चर्चा से क्या लाभ? शादी करने वाला भी तीर्थंकर हो सकता है और नहीं करने वाला भी तीर्थंकर हो सकता है शादी करने या न करने से तीर्थंकराव में कोई अन्तर नहीं आता। इस साम्प्रदायिकता ने कितना नाश किया तुम्हारा?

जैन शास्त्र ९०० वर्ष वाद लिखे गये। करोड़ों ग्रन्थ श्वेता-म्बरों में भी है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

जैन ज्योतिष, वैंद्यक, विज्ञान, प्रमाणतम विक्षेप की विवेचन द्रव्यानुयोग, अंक चिंतन आदि ज्ञान भरा हुआ है। ज्ञान के भण्डार की दृष्टि से दोनों सम्प्रदाय समृद्ध हैं। मैं छुट्टराम का विरोधी हूं। ठेक, किसी का मंजूर नहीं करता। अहंकार उन कुन्द कुन्द संमंत भद्र, सिद्धसेन दिवाकर हेमचन्द्र आदि शास्त्र प्रणेता में नहीं। पर, उनके ग्रन्थों को सिर पर लाद कर फिरने वाले अभिमान से फूले नहीं समाते।

डेढ़ ईंट की मस्जिद पैं,
आहिद को ये गरूर।
खुदा के फजल से वो भी,
घर का मकान नहीं॥

यह धर्मांकता और साम्प्रदायिक व्यामाहे मनुष्य को पागल बना देता है। जैन साहित्य की मौलिकता प्रायः सब क्षेत्रों में निखरी है।

यदि आप साहित्य की विलक्षणता देखना चाहते हैं तो कर्म

वाद, प्रमाणनय भी निक्षेप का वर्णन, द्रव्य का विवेचन देख जाइये।

मैं एक जैन साधु हूं अतः आप मेरी बात नही सुनते। हाँ यदि मेक्स मूलर था हरमन जोलाबी कहे तो आप आश्चर्य से सुनते हैं।

अभी-अभी हरिसत भट्टाचार्य ने जैन तत्व विज्ञान पर लिखा है हमारे यहां चिन्तन की कमी नहीं। मैं अन्त का विरोधी हूँ।

हिन्दू धर्म और जैन धर्म एक दूसरे का सहायक है। दोनों का रदून एक है। वैदिक धर्म में भी उदात्त चिंतन है अहंकार न करो।

आज साहित्य जो धर्म ग्रन्थ हैं—उनमें ११ अंग, १२ उपांग, ४ मूल, ४ छेद, १ आवश्यक में ३२ स्थानकवासी और तेरापंथी मानते हैं। १३ प्रकीर्णक मिलाकर और श्वेताम्बर मानते हैं। कुछ पाहड़ (प्राभृत) मिलकर भी माने जाते हैं।

दिगम्बर ८ प्राधृत, खण्ड-खण्डानुयोग, तत्वार्थ सूत्र और उनके पूरक ग्रन्थों को मानते है। शेष साहित्य दर्शन, कर्मकाण्ड आदि सांप्रदायिक रूप में भी है।

कथा साहित्य खूब लिखा गया है। जो कथा साहित्य जैन के पास है। वैश्य में बहुत कम मिलेगा। मध्य एशिया तक हमारी कहानियाँ पहुंच गईं।

—:०:—

मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज के विदेश भ्रमण से लोटने शुभ उपलक्ष पर "कमला पॉकेट बुक्स" की ओर से उनकी वाणी से ओत-प्रोत पांच जीवनोपयोगी धार्मिक पुस्तक प्रस्तुत करता है।

ये पुस्तकें आपका मार्ग दर्शन करेगी। जीवन के प्रत्येक लाहों पर उपयोगी—

(१) अहिंसा परिव्राजक मुनि श्री सुशील कुमार जी।
(२) एक जीवन करोड़ तत्व।
(३) आत्म सयम।
(४) जीओ और जीने दो।
(५) अभय दान।

उच्च कोटि के साहित्य के लिए हमेशा कमला पॉकेट बुक्स खरीदें।

अगर आप पुस्तक मंगाना चाहते हैं तो निम्न पते पर सम्पर्क करें—

अभय वाणी

चरित्र धर्म :—

अहिंसा के पोषक के लिये जैसे चार अन्य व्रतों की सुरक्षा पंक्ति बनाई गयी है उसी प्रकार गृहस्थ के लिये १२ व्रतों की स्थापना की गई है, शेष उन आठ व्रतों में तीन गुण व्रत और चार शिक्षा व्रत के नाम से पुकारे जाते हैं।

पांच अणुव्रत:—

प्रथम अणुव्रत अहिंसा है, अहिंसा का अर्थ है मन, वचन काया से किसी भी त्रस जीव की हिंसा नही करना और स्थावर जीव की रक्षा का प्रयत्न करना। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति ये स्थावर हैं गृहस्थ की हिंसा चार प्रकार की है।

आरंभी, उद्योगी, विरोधी और संकल्पी। गृहस्थ को अनेक प्रकार का आरम्भ करना पड़ता है—(आरंभ-पापक्रिया) भोजन बनाना। उद्योगी हिंसा—गृहस्थ-व्यवहार चलाने के लिये उसे कोई न कोई उद्योग तो करना ही पड़ता है। आरंभ और उद्योग में हिंसा का मिश्रण तो रहता है और फिर संसार में रहते हुए अनेक प्रकार के विरोधी वर्ग—चोर, जार, ठग, शत्रु, समाज-राष्ट्रद्रोह से भी सामना हो जाता है और उसमें भी राग द्वेष होने के कारण हिंसा का दोष लगता है और फिर अन्त में रही

संकल्पजा हिंसा। जानबूझ कर हिंसा करना, नौकर, पड़ौसी और छोटे-मोटे प्राणी इन सब को संकल्प करके मारने की भावना वनाना, वाणी से मारने की बात कहना और शरीर से मारना इसे संकल्पी हिंसा कहते हैं।

गृहस्थ के मार्ग को विषम देखते हुए ही पूर्ण अहिंसा तक पहुंचने के लिये मध्य में सरल और अपूर्व कठोर मार्ग की व्यवस्था की है। अन्तिम हिंसा का पूर्णतया और शेष तीन प्रकार की हिंसा पर मर्यादा करना अथवा सावधान रहने का आदेश देकर ही श्रावक को अहिंसा व्रत की साधना वतला दी है।

मानव जाति यदि केवल संकल्पी हिंसा का भी त्याग कर दे और संसार के अन्य प्राणियों के प्रति प्रेम-भाव रखे, दुनिया में शान्ति का साम्राज्य आ सकता है। शान्ति का सही सीधा और सरल मार्ग है।

अहिंसा की वृद्धि के लिये इन दोषों से वचना चाहिये:—

(१) जीवों को मारना पीटना, त्रास देना।
(२) अंग भंग करना, अपंग वनाना या विरूप करना।
(३) कठोर वन्धन से वांधना या पिंजरे आदि में रखना।
(४) शक्ति से अधिक भार लादना या काम लेना।
(५) समय पर भोजन न देना, भूखा प्यासा रखना।

असत्य अणुव्रत:—

१—मन, वाणी और शरीर से कभी भी स्थूल असत्य नहीं वोलने की प्रतिज्ञा करना और सामान्य या सूक्ष्म असत्य के प्रति सावधान रहना यही असत्याणुव्रत है।

सामान्य या सूक्ष्म असत्य की परिभाषा कुछ निश्चित नहीं की जा सकती, किन्तु तो भी जिस असत्य से समाज को अविश्वास की भावना वढे और राज्य कानून का उल्लंघन हो,

इसे स्थूल असत्य कहते हैं। और इससे विपरीत सूक्ष्म असत्य। इस प्रकार का भी असत्य हानिकर है। असत्याणुव्रत के रक्षा के लिये इन पांचों बातों से बचना चाहिये—

(१) दूसरे पर झूठा आरोप लगाना।
(२) दूसरे की गुप्त बातें प्रगट करना।
(३) पत्नी आदि के साथ विश्वास घात करना।
(४) बुरी या झूठी सलाह देना।
(५) झूठी दस्तावेज बनाना, जालसाजी करना।

आचौर्याणुव्रत :—

मन वाणी तथा शरीर से किसी की भी सम्पत्ति पर अनुचित अधिकार न करने की प्रतिज्ञा को आचौर्याणुव्रत कहते हैं। इसमें भी छोटी और मोटी चोरी को ऊपर की तरह समझ लेना चाहिये।

किसी वस्तु को चोरी से लेना और सहयोग मित्रतापूर्वक लेना। इन दोनों मार्गों में से किसी से वस्तु मांगना श्रेयस्कर है चोरी से लेना अहितकर है। गृहस्थ को सम्पूर्णतः चोरी का त्याग करना कठिन पड़ता है तो सेन्ध लगाना, जेब काटना डाका डालना, सूद और ब्याज के बहाने से किसी को लूट लेना इन मोटी चोरियों का तो उसे त्याग करना चाहिये।

पांच बातों से बचना चाहिये—

(१) चोरी का माल खरीदना।
(२) चोरी के लिये सहायता देना।
(३) राष्ट्र विरोधी कार्य करना, कर आदि न देना।
(४) झूठ तोल-माप करना।
(५) मिलावट करके अशुद्ध वस्तु बेचना।

ब्रह्मचर्याणुव्रतः—

शरीर का ब्रह्म वीर्य है, उस वीर्य की रक्षा के लिये जो मन

का बल, आत्मा का प्रकाश, शरीर की स्वस्थता और समूचे जगत के तत्व का पिण्डीभूत रूप है उसकी रक्षा के लिये मन, वाणी तथा शरीर से स्त्री-पुरुष सम्बन्धी किसी भी प्रकार के संभोग की इच्छा न रखना पूर्ण व्रत है, किन्तु इसे अपने स्त्री तक मर्यादित कर देना अणुव्रत है।

जैनधर्म संसर्ग की भावना को प्राकृतिक कह कर उपेक्षा नहीं करता है। संभोग प्रवृत्तितों में असंख्य सूक्ष्म जीवों का वध होता है और राग-द्वेष का उग्र रूप बनता है, जो समस्त पापो का मूल है। आसक्ति इस पाप का कारण है किन्तु तो भी गृहस्थ उसे स्वपत्नि और पत्नि इसे स्वपति तक मर्यादित कर लेते हैं और अन्य संसार की तमाम स्त्रियों को—बड़ी को मां सामान, छोटी को बहिन और छोटी को पुत्री की भावना से देखता है तो अवश्य ब्रह्मचर्याणुव्रत की रक्षा हो सकती है।

पांच बातों से बचना चाहिये—

(१) किसी रखैल के साथ कुसम्बन्ध जोड़ना।
(२) पर-स्त्री अविवाहित, वेश्या आदि से सम्बन्ध जोड़ना।
(३) अप्राकृतिक व्यभिचार करना।
(४) दूसरे के विवाह, लग्न आदि में अमर्यादित भाग लेना।
(५) काम भोग की तीव्र आसक्ति रखना, अति संभोग करना।

अपरिग्रह व्रत :—

परिग्रह संसार का सबसे बड़ा पाप है, मानव जाति की अर्थ-व्यवस्था, गरीब, अमीर आदि की विषमता इसी परिग्रह पिशाच की देन है। परिग्रह वस्तु है, किन्तु वस्तु के प्रतिमूर्च्छा भाव ही वास्तविक परिग्रह है। संसार का चार में से तीन भाग का पाप, कलह, संघर्ष आदि दूषित भावों का यही दोष

जन्मदाता है। तो भी गृहस्थ का इस वस्तु परिग्रह के विना तो काम नहीं चल सकता, इसीलिये उसकी प्रतिज्ञा का यह स्वरूप होना चाहिये।

मन, वाणी तथा शरीर से अमर्यादित स्वार्थवृत्ति तथा संग्रह वुद्धि से धनादि परिग्रह का त्याग करता हूं और आवश्यक तथा अनिवार्य अपने धन, जन, सम्पत्ति आदि सभी मर्यादा करता हूं।

अत: उसे पांच वातें निर्धारित करनी चाहियें—

(१) मकान, दुकान और खेती आदि की भूमि।
(२) सोना चांदी।
(३) नौकर, चाकर, गाय, भैंस (द्विपद चतुष्पद)
(४) मुद्रा, जवाहिरात और धान्य।
(५) प्रतिदिन के व्यवहार में आने वाली पात्र, शयन, आसन आदि वस्तुयें—इन सबकी मर्यादा करनी आवश्यक है।

दिग्व्रत:—

मनुष्य पाप, धन और विजय के लिये दिग्विजय करते है, संसार का परिभ्रमण करते हैं, आज तक राजागण दिग्विजय के लिये संहार करते रहे हैं और व्यापारी आसपास के राष्ट्रो की गरीव प्रजा का शोषण करते रहे हैं, इसलिये छठे दिग्व्रत का विधान किया गया है।

अपनी त्याग-वृति के अनुसार पूर्व, पश्चिम चारो दिशाओं में अपनी कर्म क्षेत्र की मर्यादा वांध करे उससे वाहर पापो-चारण का सर्वथा त्याग करना होता है।

त्याज्य पांच वातें—

भ्रमण करने के तीन मार्ग—

(१) ऊर्ध्व—वायुयान यात्रा, पर्वतारोहण।

(२) अध:—समुद्रगर्त, खोह इत्यादि में उतरना।

(३) तिर्यक्—सीधे मार्ग पर चलना।

(४) क्षेत्र-वृद्धि प्रमाण—क्षेत्र की सीमा निश्चित करना।

(५) सीमा मर्यादा—मर्यादा उल्लंघन कर जाना। इन चारों की उचित मर्यादा करके सीमा बांधना और पांचवें नियम के लिये सावधान रहना।

श्रावक के तीन प्रकार हैं। व्रतों का अनुरूप से पालन करना अणुव्रत है। किन्तु व्रतों की अणुरूप साधना के भी तीन प्रकार हैं। देशव्रत व पक्ष रूप से निष्ठा रूप से अथवा पूर्ण देशव्रत का पालन करना। प्रारम्भ, मध्य और पूर्ण ये तीन अवस्थाएं देश व्रत साधना की कही गई है। इन तीनों गुणों के आधार पर श्रावक भी तीन प्रकार के होते हैं—

पाक्षिक, नैष्ठिक, साधक।

जो एक देश से (अर्थात्—आंशिक रूप से) हिंसा का त्याग कर श्रावक धर्म अंगीकार करता है उसे पाक्षिक श्रावक कहते हैं।

जो अतिचार-दोष रहित श्रावकधर्म का पालन करता है वह नैष्ठिक श्रावक होता है।

मानव की गृद्धदृष्टि को रोकने के लिये जो देश चारित्र को पूर्ण रीति से पालन करता है और आत्मा की स्वरूप स्थिति में लीन हो जाता है, वह साधक श्रावक कहलाता है।

पाक्षिक श्रावक:—

अहिंसा की साधना करने की प्रारम्भिक दशा में प्रवेश करते ही बहुत जीव वाले वृक्षों के फल खाना छोड़ता है। जैसे:— पीपल, वट, पिलखन गूलर, आदि काक उदुम्बरी ऐसे वृक्षों के फल नहीं खाने चाहिये। झूठ, चोरी, व्यभिचार और धन के लोभ को छोड़ने का सतत प्रयत्न करता है।

जूआ वेश्या, शिकार, पर-स्त्रीगमन, मद्य मांस आदि

कुव्यसनों का त्याग करता है। सुपात्रदान, अनुसान, अनुकम्पादान, लोकोपकारी कृत्य, मानवता के धारण को निभाने वाले कृत्य करता है।

नैष्ठिक श्रावकः—

निष्ठापूर्वक अहिंसादि पन्च अणुव्रतों की साधना करना देश चारित्र की मध्य दशा है। पांच मूल व्रत और तीन गुण व्रत आदि व्रतों को जो किसी भी प्रकार का दोष नहीं लगाता।

मद्य सम्बन्धी बुरे व्यापार का त्याग करता है। सात्विक शुद्ध स्वच्छ भोजन, स्वल्प व्ययी वस्त्र, छान करके पानी और सदाचारी बनने का जो दृढ संकल्प करता है और हर समय संसार है, वही नैष्ठिक श्रावक है।

उपयोग-परिभोग व्रतः—

भोग का अर्थ है एक बार भोग में आने वाली वस्तु जैसे भोजन आदि। बार.२ भोग में आने वाली वस्तु वस्त्र आदि। इस व्रत को दो विभागों में विभक्त किया है भोजन और कर्म (व्यवसाय)

भोजन में शरीर के मर्दन से लेकर समस्त भोजन सामग्री की—खाद्य, पेय, आस्वाद्य—इन सबकी मर्यादा करनी पड़ती है। इसे २५ प्रकार में बांटा गया है और इसके साथ इस व्रत में भोजन की सात्विकता तथा अहिंसा-वृद्धि की ओर अधिक ध्यान दिया गया है।

मद्य, मांस, गूलर, बड़, पीपल, पोकर, उदुम्बर तथा अज्ञात फल, रात्रि-भोजन को सर्वथा श्रावक के लिये त्याज्य बतलाया है।

भोजन में सात्विकता तथा अहिंसा दृष्टि अपनानी चाहिये।
त्याज्य पांच बातें:—

(१) व्यक्त सजीव वनस्पति का आहार नहीं करना ।
(२) सजीव से संवद्ध वनस्पति आहार नहीं करना ।
(३) अपपक्का कच्चा आहार नहीं करना ।
(४) जो वस्तु पककर सड़ गई हो उसका आहार नहीं करना ।
(५) तुच्छ पदार्थों का आहार नहीं करना ।

अनर्थदण्डविरमरण व्रतः—

विना प्रयोजन के ही हिंसा करते रहने को अनर्थदण्ड कहते हैं। विवेक शून्य मनुष्यों की मनोवृति चार प्रकार से अनर्थमय हिंसा उपार्जन करती रहती हैं।

(१) अपध्यान— रागद्वेषमय विचार करते रहना।
(२) प्रमोदोचरित—मद, कषाय, विषय विकथा करना।
(३) हिंसा प्रदान—हिंसा के साधन वंदूक आदि बनाकर दूसरों को देना।
(४) पाप कर्मोपदेश—पाप जनक कर्मों का उपदेश।

इस व्रत में पांच त्याज्य बातें—

(१) कामवासना-वर्धक बातें नहीं करना।
(२) वासनोत्तेजक कुचेष्टा नहीं करना।
(३) असभ्य वचनों का व्यवसाय नहीं करना।
(४) हिंसक शस्त्रों का व्यवसाय नहीं करना।
(५) उपभोग-परिभोग की वस्तुओं का अधिक भोक्ता नहीं होना।

अनर्थ दण्ड मानव की उच्छृंखल और व्यर्थ में ही होने वाली हिंसा को रोकने के लिये है।

चार शिक्षा व्रत—

शिक्षा का अर्थ है—आचरण, अर्थात् पांच अणुव्रतों और तीन गुण व्रतों को पालन करने की पद्धति।

सामायिक व्रत—

जैनधर्म में विषमता को ही पतन का मूल कारण माना गया है और आर्हती साधना का चरम उद्देश्य समता को केन्द्र मान करके ही मुक्ति की ओर गया है।

समता व्रत का महत्व इसलिये भी बढ़ जाता है कि इस व्रत में तमाम सावद्य पापकारी प्रवृत्तियों को त्याग कर मन, वचन तथा काया के योग को कमसे कम ४८ मिनिट तक और अधिक से अधिक यावत्जीवन तक इस समता मुद्रा को धारण करना पड़ता है।

साधुता की सीढ़ी तक पहुंचने का यह प्रथम चरण है। इससे मानव में विषमताओं से हटकर आत्म-दर्शन और समस्त प्राणियों में समत्व दर्शन की स्फूर्ति प्राप्त होती है। सामायिक के कितने ही प्रकार हैं:—

सम्यक्त्व सामायिक—

तत्व के प्रति श्रद्धा, जीवन के प्रति सजगता, विचारों पर नियमन और प्राणियों पर दयाभाव करना भी सामायिक का एक प्रकार है।

श्रुत सामयिक—

आगमन या स्वाध्याय करना, अर्थ तथा मूल को समझना भी सामायिक है। स्वाध्याय में भी मनोवृत्ति और मानसिक चञ्चलताएं सम—समान हो जाती हैं, किन्तु स्वाध्याय आत्म-दर्शियों की वाणी का ही होनी चाहिये। उपन्यास आदि का स्वाध्याय तो मन को विकृत भी कर सकता है।

चारित्र सामायिक—

कर्मों की सम्बद्धता को उपशान्त करना, क्षय करना अथवा क्षय और उपशम करना भी सामायिक है।

इस व्रत की पांच त्याज्य बातें—

(१) मनोदुष्प्रणिधान—मन से असत् प्रवृत्ति करना।

(२) वचन दुष्प्रणिधान—वचन से असत् प्रवृत्ति करना।

(३) काया दुष्प्रणिधान—काया की असत् प्रवृत्ति करना।

(४) स्मृति अकरणता—सामयिक के सीमित समय को नहीं करना।

आत्म-साधक का सामायिक की साधना करना अन्तर्मुखी विराट् चिन्तन का अन्तर्द्वार खोलना है, इसका प्रारम्भ ही पापाचरण के निरोध और आत्म-परीक्षण से होता है।

देशावकाशिक व्रत:—

देश, क्षेत्र, अवकाशिक—निश्चित मर्यादा करना अर्थात् दिग्व्रत में जो दिशाओं का परिमाण और भ्रमणीय गमन का निश्चित भ्रमण की सीमा करनी पड़ती है, उसमें दैनिक क्षेत्र की सीमित मर्यादा करना और भोजन आदि योग्य सामग्री की एक एक दिन के लिये अति संकुचित मर्यादा बांधना ही देशावकाशिक व्रत है।

दिग्व्रत में और इसमें अन्तर इतना ही है कि दिग्व्रत यावत्-जीवन का होता है और यह दैनिक होता है। विवेकशील श्रावक एक घड़ी, प्रहर, दिन पक्ष मांस, आदि नियत समय करके क्षेत्र मर्यादा कर लेता है।

इस व्रत में पांच आगार हैं:—

(१) राजाज्ञा
(२) देवोपसर्ग
(३) रोगवश
(४) मुनि दर्शन
(५) उपाकारार्थ

इन पांचों कारणों के कारण यदि मर्यादित क्षेत्र का

उल्लंघन करना भी पड़ता है तो व्रत टूटता नहीं है।

इस व्रत की पांच त्याज्य बातें —

(१) आनयन प्रयोग—अन्य व्यक्ति से मर्यादित क्षेत्र से बाहर की वस्तु मंगानी।

(२) प्रेष्य प्रयोग—मर्यादित क्षेत्र से वस्तु भेजना।

(३) शब्दानुपात—शब्द के प्रयोग से सीमा का अतिक्रमण करके बुलाना।

(४) रूपानुपात—अपने रूप या चेष्टा द्वारा।

(५) बाह्य पुदगल परिक्षेप—कंकर, लकड़ी फेंक कर मर्यादित क्षेत्र से बाहर के आदमी को बुलाना।

प्रतिज्ञा करके जो सीमा निश्चित की हो उसका किसी प्रकार से भी उल्लंघन नहीं करना ही इस अतिचार व्यवस्था का उद्देश्य है।

पौषधोपवास व्रतः—

पौषधोपवासका अर्थ है एक अहो-रात्रि अन्नजल त्याग कर शस्त्र व्यापार से विरत होकर सावधान से योग—पापकारी वृत्ति, छोड़ कर ब्रह्मचर्य आदि व्रतों को पूर्णता से स्वीकार करके परिपूर्ण पौषध व्रत अंगीकार किया जाता है। यह साधु जीवन का पूर्णतः एक दिन का अभ्यास है। अष्टमी, पंचमी, आदि विशिष्ट तिथियों पर पौषध व्रत का पालन किया जाता है। इसमें भेष भी साधु जैसा और क्रिया भी कुछ कुछ साधु जैसी पालन करनी पड़ती है। स्वाध्याय, ध्यान, चिन्तन में दिन रात लगाना पड़ता है। आत्मिक और धार्मिक निश्चलता के लिये यह व्रत परमावश्यक है।

पांच त्याज्य बातें:—

(१) शुद्धासन का प्रतिलेखन नहीं करना।

(२) वस्त्रादि का रजोहरण से परिमार्जन नहीं करना।

(३) मल-मूत्रादि की भूमि को यत्नपूर्वक न देखना।

(४) मल-मूत्रादि की भूमिका परिमार्जन न करना।

इन समस्त बातों का त्याग कर साधक को आत्मस्वभावी बनना चाहिये।

अतिथिसंविभाग:—

अतिथि—आगमन की निश्चित तिथि—समय हो जिसका, ऐसे साधु को अतिथि कहते हैं। अतिथि को निर्दोष आहार देने की भावना को अति संविभाग व्रत कहा गया है।

परिग्रह से उत्पन्न हुई संग्रह की भावना को नष्ट करने के लिये इस व्रत की व्यवस्था की गई है। अतिथि शब्द में साधु ही अधिक ध्वनित होता है। किन्तु अन्य भी योग्य पात्र के लिये गृहस्थ को स्वधर्मी के नाते उचित सत्कार-सम्मान की भावना रखना चाहिये।

गृहस्थी के द्वार खुले रहने चाहियें। कोई भी भूखा प्यासा यदि समर्थ गृहस्थ के द्वार से निराश लौटता है तो वह सदगृहस्थ के लिये पाप है। यह अतिथि संविभाग व्रत भी इसी पाप से बचने का उपदेश करता है।

इस व्रत में पाँच त्याज्य बातें:—

(१) अयोग्य वस्तु देना।

(२) सचित्त मिश्रित वस्तु देना।

(३) अतिथि आने के समय द्वार बन्द कर लेना।

(४) स्वयं भोजन न देकर दूसरे से दिलवाना।

(५) दुखी होकर भोजन देना।

साधक श्रावक, बारह व्रतों को निर्दोष तथा उच्चता और पूर्णता के साथ पालन करता है और अन्तिम समय मृत्यु को सन्निकट आई जानकर समाधि मरण से संल्लेखना व्रत अंगीकार करके समता भाव से मृत्यु को आने देता है—दुर्भिक्ष,

संकट, उपसर्ग के आने पर भी जो अपने व्रतो की रक्षा के लिये अपने प्राणों की उत्सर्ग अकुलाहट वरण करता है, वही साधक श्रावक होता है।

जैन श्रावक जीवन में अनासक्त रह कर संसार का भला करता है और मृत्यु आने पर समाधिस्थ हो जाता है, यही उसके जीवन की कला है। उसमें पूर्णतया लोभ, ममता तथा आसक्ति का प्रादुर्भाव नहीं होने पाता। यही उसकी विशेषता है।

समाधि मरण का अर्थ आत्म साधन नहीं। अपितु मृत्यु के समय जीवन की आशा में न फंस कर मृत्यु के समय भी अपने आत्मभाव की सफलता बनाये रखने का नाम है।

आत्मघात दुःख से भाग कर पलायन होता है। समाधि-मरण मृत्यु से भी बढ़कर साहस और समता के साथ मृत्यु को आने देना और अन्त-क्रिया को सुधारे रखना ही समाधि का उद्देश्य है।

भगवान ने मरण दो प्रकार का बतलाया है—१ बाल मरण (अज्ञानी मरण), २ पण्डित मरण। तड़प कर, परवशता, शस्त्रादि, गिरिपतन—फांसी, अग्नि प्रवेश, विप-भक्षण आदि कुक्रियाओं द्वारा मरना बाल मरण है।

पण्डित मरण खानपान का त्याग कर पादोपगमन (वृक्ष से सदृश स्थिर होकर। समाधि भाव से मृत्यु को प्राप्त होना पण्डित मरण है।

अणुव्रतों की सूचना के अनन्तर यह समझना आवश्यक रहेगा कि इन व्रतों में परस्पर सम्बद्धता की एक कड़ी काम करती है। एक व्रत के टूटते ही दूसरे भी टूटने लग जाते हैं। ये सब व्रत एक दूसरे के पूरक हैं, इन व्रतों के पालन करने से आध्यात्मिक उन्नति, सामाजिक न्याय तथा परम सुख की

प्राप्ति तो होती है, साथ में मानव की वृद्धि निरन्तर के साथ साथ आत्म-विस्तार की भावना को भी बल मिलता है।

इन साधनाओं में संसार को छोड़कर भागने का नाम नहीं है। संसार को मिथ्या कह कर अवास्तविक समझने की भ्रम-पूर्ण बात भी नहीं है। क्योंकि इन व्रतों का आधार है भगवती अहिंसा, और अहिंसा का प्रथम चरण यही है, समत्वदर्शन, अहिंसा से सर्वसमा संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ है। जीवन का मूल्य बढ़ता है, प्राणियों पर प्रेम भावना ही नहीं अपितु मित्रता के अधिकारी का पद दिया गया है।

संसार के तमाम प्राणियों को मित्र समझे बिना अहिंसा का कभी पालन नहीं हो सकता। मानवता का उत्थान आत्म-विस्तार का माध्यम अहिंसा ही है। इसी से ही सार्वभौम शान्ति का अर्जन होगा।

संसार इन वृतों की उपयोगिता समझकर उसका पालन करेगा तो अवश्य कल्याण का सुवर्ण दिन आयेगा।

श्रमणत्व का उदय,

मनुष्य समाज का रक्षक, राष्ट्र का सैनिक और परिवार का केवल सदस्य बन जाने मात्र से पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकता, उसे इन कर्तव्यों से पार होकर जीवन के अन्तिम मार्ग अकेले होकर भी पार करना पड़ता है। इसी में मानवता की सर्वोच्च सिद्धि है। और यही है श्रमणत्व परम्परा।

दुनिया के झंझटों और बच्चों की ममता का त्याग ही सन्यास या श्रमण नहीं कहा जा सकता, बल्कि श्रमत्व तक पहुंचने के लिये उसे धन और सम्पत्ति का लोभ नष्ट करना पड़ता है, वह सफलता पर झूमता नहीं और असफलता पर हतोत्साही होता नहीं।

श्रमण की यही सबसे बड़ी विजय है कि वह तिरस्कार

सहन कर सकता है किन्तु कटु वचन बोल कर किसी को वह अपमानित नहीं करता।

श्रमण न तो अपनी व्यक्तिगत व कोई आकांक्षा रखते हैं और नहीं आसक्ति। सम्पूर्ण पृथ्वी को अपनी मान कर संसार के जीवों को मित्रता का सन्देश देकर सदाचार का कठोर मार्ग अपनाता है।

श्रमण शारीरिक पूर्ति के लिये गृहस्थों पर अवलम्बित है, क्योंकि श्रमण समाज की भौतिक उन्नति में कुछ भी नहीं करता है। वह आध्यात्मिकता की एक चलती-फिरती एक संस्था बन कर संसार को आत्म-बोध प्रदान करता है।

साधु संसार के राष्ट्रीय अहंवाद का समर्थन नहीं करता, क्योंकि श्रमण इन तमाम मनोवृत्तियों को संकीर्ण मानता है, श्रमण को सम्पूर्ण जीवन के प्रति आस्था है, भिन्न २ रंग- प में बटे मानवीय टुकड़ियों के साथ नहीं। मुक्त पुरुष संसार की भलाई के कभी भी विमुख नही होते और कोई कामना भी नहीं रखते संसार के पीड़ित प्राणियों के दुखों के प्रति श्रमण को दयाभाव होता है और उसे मिटाने की धगश। दुःख से मुक्त कराने को ही श्रमण अपने धर्म का सबसे बड़ा सिद्धान्त मानता है।

श्रमण संसार की वह सबसे श्रेष्ठ आत्मा है, जो समूची मानवता का साकार प्रतिनिधि बन कर आध्यात्मिक उन्नति और परम शान्ति के उपायों का भूमि तल पर शोध करता है और मानव जाति तथा प्राणी सृष्टि को उस महान अन्वेषण में निष्काम सम्पन्न बना देता है। शमन, श्रम और शान्ति का प्रतीक श्रमण इस भूतल पर सदेह परमात्मा है।

श्रमण भगवान महावीर ने साधु को सम्बोधन करते हुए कहा था—

साधुओ ! श्रमण निग्रन्थों के लिये लाघव, अल्पेच्छा, अमूर्छा, अगृद्धि अप्रतिबद्धता, अक्रोधत्व, अमानत्व, अमायत्व, और अलोभत्व ही प्रशस्त है।

इन्हीं गुणों से श्रमण संसय पार करता है। उसी श्रमणत्व के प्रकाश के लिये भगवान ने चारित्र शास्त्र का विधान किया है।

चारित्र की-व्याख्या:—

अहिंसा की विराट साधना को चारित्र कहा जाता है। जैन धर्म ने आत्मा की शुद्ध दशा में स्थिर रहने के आचरण को ही चारित्र का अर्थ माना है। परिणाम-शुद्धि तथा पालन की भिन्नता और तपस्या आदि विशिष्ट क्रियाओं की तरतमता के कारण चरित्र को पांच रूपों में बांट दिया है--

प्रथम चरित्र:—सामायिक चरित्र है।

भगवान कहते हैं:—आत्मा ही सामायिक है। यही सामायिक का अर्थ है और यही व्युत्सर्ग है। संयम के लिये क्रोध, मान, माया और लोभ को त्याग कर इन दोषों की निन्दा करो। दोषों की गर्हा संयम है। दोषों की गर्हा समस्त दोषों का नाश करती है। यही सामायिक का मूल रहस्य है। आत्मा को समभाव में स्थिर रखने के लिये सम्पूर्ण अशुद्ध प्रवृत्तियों का त्याग करना ही सामायिक चारित्र है। शेष चारों चारित्रों का आधार सामायिक ही है किन्तु शेष चरित्र आत्मा की विशिष्ट परिणति, कषायों का शमन, इन्द्रियों का निरोध, महाव्रतों का सम्पूर्ण पालन तथा कठोर परिषहों का सहन, संवर और निर्जरा रूप पवित्र भावना के आधार से विशुद्ध होते हैं। उत्तरोत्तर पवित्रता को ही पांच रूप में बांट दिया है।

सामायिक चारित्र सामान्य तथा नियत समय के लिये पालन किया जाता है।

छेदोपस्थापन चारित्रः—

विनिष्ठ श्रतम्यास की प्रक्रिया को पूरा करने के लिये प्रथम दीक्षा के दोषों के आगमन को छेद कर नये सिरे से पूर्णतः अहिंसा की दीक्षा दी जाती है, इसे छेदोपस्थापन चारित्र कहा जाता है। पांच महाव्रतों की पूर्णतः पालन करने की प्रतिज्ञा होती है।

साधुता का अधिकारी वही हो सकता है जो ममता, अहंकार, निसंग और कठोरता को त्याग कर प्राणी मात्र पर दया, समभाव—निन्दा प्रशंसा, से तटस्थ तथा सर्वत्र समरस रहने की क्षमता रखता है।

वही साधु हो सकता है जो २७ गुणों का साकार मूर्तिमान उदाहरण होता है। साधु के निम्न २७ गुण हैं:—

(१) अहिंसा—

मन, वाणी और काया के तीन करण और तीन योग के द्वारा वह सम्पूर्ण अहिंसा पालन करने की प्रतिज्ञा लेता है।

साधु का मन अमृत कुण्ड और वाणी अमृत का प्रवाह तथा काया अमृत की देह के समान ही होनी है। साधक अहिंसा के आदर्श का पूर्णतया पालन का महाव्रत लेकर भूमण्डल पर विचरण करता है। तलवारों के प्रहारों और चन्दन के लेपों में अपना मध्यस्थ भाव बनाये रखता है। साधक का दिव्य अहिंसा व्रत आत्मदर्शन की महत्वपूर्ण साधना हो इसीलिये अन्तर और बहिरंग के समस्त दोषों को सर्वदा धोना होता है।

(२) सत्य:—

आत्मसाधक सत्य को भगवान मानता है। मन वाणी और काया से कभी भी असत्य और अप्रिय भाषण नहीं करता। सत्य आत्मसिद्धि का अमोघ उपाय और अनन्त शक्ति तथा

उत्कृष्ट विश्वास की अत्यर्थ औपधि है। साधु सत्य का पूर्णतया पालन करने के लिये दृढ़प्रतिज्ञ होता है।

मन से सत्य, सोचना, वाणी से सत्य बोलना और काया से सत्य का आचरण करना ही सत्य का पूर्ण रूप है।

(३) आचौर्य व्रत:—

साधक किसी भी वस्तु पर अपना अधिकार नहीं रखता, आवश्यक वस्तु स्वामी की आज्ञा लेकर उपयोग में लाता है, वह कभी भी किसी भी वस्तु को आज्ञा लिये विना नहीं लेता है। मन, वाणी और काया से इस व्रत का पूर्ण पालन करता है।

(४) ब्रह्मचर्यार्थ साधु निम्न बातें स्मरण रखता है:—

शरीर शृंगार, रससेवन, नृत्य-गीत, स्त्री-संसर्ग, काम-संकल्प, अंगोपांग-दर्शन, रूपावलोकन वृत्ति, पूर्वभुक्त काम भोगों का स्मरण, भविष्य में काम की चिन्ता और परस्पर रति संसर्ग—ये दस बातें साधक अपने महाव्रत की रक्षा के लिये निकट तक नहीं आने देता।

(५) अपरिग्रह महाव्रत:—

समस्त उपाधि चाहे वह घर के रूपों में हो या हिरण्य सुवर्ण के रूप में, धनधान्य, द्विपद चतुष्पद तथा धातु के पात्र के रूप में हो वह सदा के लिये इन समस्त परिग्रहों को मन, वचन तथा काया से छोड़ देता है।

कौड़ी मात्र का भी परिग्रह वह पास में नहीं रखता। माया, असंग, अनासक्त, अपरिग्रही और अममत्वी होकर विचरण करता है।

साधु-धर्म की रक्षा के लिये जो उसे उपकरण रखने पड़ते हैं, उनपर भी वह ममत्व बुद्धि नहीं रखता।

यद्यपि मूर्च्छा को परिग्रह कहा गया है, किन्तु इस बाह्य

परिग्रह के त्याग से आन्तरिक अनासक्ति का विकास होता है, इसलिये परिग्रह का त्याग आवश्यक है।

आन्तरिक परिग्रह १४ प्रकार का है:—

मिथ्यात्व, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया और लोभ—इन सबका त्याग करना भी साधु के लिये आवश्यक होता है।

अन्तर और बाह्य परिग्रह को जो छोड़ता है, वही अपरिग्रही, निर्ग्रन्थ, आत्मसाधक तथा श्रमण कहलाता है।

(६) ईर्यासमितिः—

जीवों की रक्षा करने के लिये भूमि को देखते हुए गमनागमन करना ईर्या समिति कहा जाता है। समिति का अर्थ होता है पाप से निवृत्ति के लिये मन की प्रशस्त एकाग्रता।

(७) भाषासमितिः—

कठोर, पीड़ाकारी भाषा का त्यागः निर्दोष और हितकारी भाषा का प्रयोग करे। हित, मित, सत्य और पथ्य रूप में भाषण करना ही भाषा समिति है।

(८) एषणासमितिः—

निर्दोष शुद्ध आहार पानी आदि उपधि का ग्रहण करना एषणा समिति है।

(८) आदानभण्डपात्रनिक्षेपणासमिति,—वस्त्र, पात्र, उपकरण आदि को उपयोग पूर्वक ग्रहण करना और भूमि पर रखना ही आदान समिति है।

परिष्ठापनिकासमितिः—

मलमूत्र तथा भुक्त शेष भोजन और भग्न पात्र उचित यत्न से साथ एकान्त और शुद्ध स्थान पर परठना, परिष्ठापनिका समिति है।

(९) मनगुप्ति:—

आर्त, रौद्र कुत्सित ध्यानों में न पड़कर संकल्प-विकल्पों से अपना मन हटाकर चिन्तन को लगाये रखना तथा मध्यस्थ भाव में स्मरण करना मनोगुप्ति है।

कायगुप्ति:—

उठने, बैठने, सोने, जगने में, यतना विवेक रखना, अशुभ व्यापारों को त्याग कर शुभ में काया को लगाना कायगुप्ति है।

(१०) कर्ण-इन्द्रिय का निरोध,
(११) चक्षुरूपान्त शक्ति,
(१२) घ्राण—सुगन्ध के प्रति उदासीनता,
(१३) रस—स्वाद की लालसा नही रखना।
(१४) स्पर्श—कोमल स्पर्श की इच्छा नहीं रखना।
(१५) भावसत्य—अन्त:करण की शुद्धि।
(१६) करणसत्य—वस्त्र-पात्र की प्रतिलेखना करना।
(१७) क्षमा—सर्वदा क्षमाशील बनाना, प्रतिशोध की भावना नहीं रखना।
(१८) विरागत—लोभ, निग्रह।
(१९) छः कार्यो के जीवों की रक्षा।
(२५) संयम-योगयुक्तता,
(२६) वेदनाभिसहन, तितिक्षा, परिपह कष्ट सहिष्णुता सहन।
(२७) मारणान्तिक उपसर्ग को भी समभाव से सहन करना।

जैन श्रमण को आचार-पद्धति संसार में मुक्ति-साधना की कठोरतम प्रणाली है।

केशलूंचन, भूमि-शैय्या और शरीर उपेक्षित छः आवश्यक क्रियाएं करना।

(क) समता भाव (ख) दोषों की आलोचना (ग) गुरुवन्दन

(घ) दोषों की आलोचना (च) शरीर के ममत्व का त्याग और समाधि (छ) चारित्र तप सम्बन्धी कोई भी नियम ग्रहण करना।

इन छः आवश्यक क्रियाओं द्वारा साधक अपनी आत्मा की विशुद्धि करता है। इसी प्रकार श्रावक को भी करना पडता है। सदैव समदर्शी, इष्टानिष्टा के योग में तटस्थ, कषाय-रहित होकर साधु विचरण करता है।

शास्त्र-ज्ञान और सेवा-भक्ति द्वारा साधक शुभ से शुद्ध की ओर जाता है। शुभ और शुद्ध की अपेक्षा से साधक के दो भेद किये गये हैं—सराग संयमी, और असराग संयमी। वीतराग बनना साधक का उद्देश्य होता है।- इसीलिये वह पांच महाव्रतों की पच्चीस भावनाएं करता है।

पांच समिति अहिंसा महाव्रत की पांच भावनायें हैं।

सत्य महाव्रत की पांच भावनाएं:—

विचार-पूर्वक बोलना, क्रोध, लोभ, भय तथा हास्य का विवेक रखकर बोलना।

अस्तेय महाव्रत की पांच भावनायें—

(१) वस्तु के स्वामी से ही वस्तु की आज्ञा मांगना।

(२) अवग्रह के स्थान की सीमा का ज्ञान करना।

(३) स्वयं आवश्यक वस्तु लाना।

(४) गुरुजनों की आज्ञा से संयुक्त भोजन से भोजन करना।

(५) उपाश्रय में ठहरने से पहले साधर्मिक की आज्ञा लेना।

ब्रह्मचर्य महाव्रत की पांच भावनायें:—

(१) स्निग्ध पौष्टिक आहार नहीं करना।

(२) शरीर की विभूषा नहीं करना।

(३) स्त्रियों के अंगापांग नहीं देखना।

(४) स्त्री, पशु, नपुंसक वाले स्थान को नहीं देखना।

(५) स्त्री-विषयक चर्चा नहीं करना।

अपरिग्रह महाव्रत की पांच भावनायें:—

शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श—इन इन्द्रियों के विषयों पर, मनोज्ञ पर प्रीति और अमोनज्ञ पर द्वेष नहीं करना।

भावनाओं को महाव्रतों की रक्षा के लिये कहा है।

साधक की प्रत्येक क्षण ऐसी भावना रहनी चाहिये:—

हिंसा पाप है, उसका निश्चित परिणाम भी दुःख है। समस्त प्राणियों में मैत्रीभाव रखना, गुणाधिकों में प्रमोद और दुःखी जीवों में करुणावृत्ति, विपरीत वृत्ति वाले मनुष्यों में माध्यस्थभाव रखना भी साधक के लिये आवश्यक है।

क्षमा, मार्दव, सरलता, पवित्रता, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य, इन दस प्रकार के धर्मों से साधक प्रत्येक क्षण सुसम्पन्न रखता है तथा इन बारह भावनाओं का चिन्तन करता है।

१ संसार की नाशवान वस्तुओं को अनित्यरूप में देखकर साधक अनित्य भावना भाता है। अनित्य की तरह अपने आपको अशरण समझना, निर्वेद (वैराग्य) की भावना को जागृत करना, चेतन और जड़ के भेद की प्रतीति द्वारा अपने शरीर का चिन्तन करना, शरीर की अशुचिता को देखना, इन्द्रिय भोगों में अनिष्ट परिणामों को सोचना, दुर्वृति को रोककर सद्वृति को जगाना, संचित कर्मों को भोगने के लिये तैयार रहना, विश्व के वास्तविक स्वरूप का चिन्तन करना, शुद्ध चारित्र और शुद्धदृष्टि की दुर्लभता का विचार करना, शुद्ध धर्म की कल्याणकारिता पर विचार करके प्रसन्न होना।

इस प्रकार की १२ भावनाओं को मन में आराधन करता हुआ साधक, तथा शीतोष्णादि समस्त कष्टों को सहन करता हुआ साधक मुक्ति का परम सुख प्राप्त करे।

साधक जीवन कष्टों का कण्टकाकीर्ण मार्ग है, पग-पग पर

उसे कष्टों का सामना करना पड़ता है। भगवान महावीर ने साधक को कष्टो से सावधान करने के लिये कष्टों की गणना करते हुए बताया है:—

(१) क्षुधा (भूख)
(२) पिपासा (प्यास)
(३) शीत (ठण्ड)
(४) ऊष्ण (गर्मी)
(५) दंशमशक (मच्छर डांस)
(६) अचेल (वस्त्राभाव)
(७) अरति (कष्टों से डर कर संयमारुचि)
(८) स्त्री-परिग्रह
(९) चर्या (गमनागमन)
(१०) नैषेधिकी (स्वाध्याय भूमिका उपद्रव)
(११) शैया (शैया की प्रतिकूलता)
(१२) आक्रोश (दुर्वचन)
(१३) वध (लकड़ी आदि की मार)
(१४) याचना (मांगना)
(१५) अलाभ (भोजन नही मिलना)
(१६) रोग
(१७) तृण स्पर्श (नग्न पैरों को कष्ट)
(१८) जल्ल (मल का कष्ट)
(१९) सत्कार-पुरस्कार (पूजा-प्रतिष्ठा)
(२०) प्रज्ञा (बुद्धि का गर्व)
(२१) अज्ञान (बुद्धिहीनता)
(२२) दर्शन परिषह (सम्यक्त्व भ्रष्ट करने वाले मिथ्यात्वी का मोहक वातावरण)

—कर्मों की निर्जरा के लिये तथा आत्म-ममता को बनाये

रखने के लिये साधक अपार कष्टों को सहन करता हुआ ही सच्चा श्रमणत्व पालन करता है। यह छेदोपस्थापन चारित्र का स्वरूप हुआ।

परिहारविशुद्धि चारित्र—

परिहार—विशुद्धि चारित्र साधक जब अपनी आत्मा को अधिक विशुद्ध और पवित्र बना लेता है और कर्मों की निर्जरा तथा आत्म-स्वरूप की प्राप्ति के लिये किसी विशिष्ट प्रकार के तप प्रधान आचार का पालन करता है तो उस संयम की उत्कृष्ट स्थिति को परिहार विशुद्धि चारित्र कहा जाता है।

सूक्ष्मसपराय चारित्र—

आत्म-साधना करता करता जब कषायों का उदय नष्ट कर देता है और सिर्फ लोभ का अंश अतिसूक्ष्म रह जाता है उस आत्मा की पवित्र स्थिति को सूक्ष्मसम्परायचारित्र कहा जाता है।

यथाख्यात चारित्र—

जिसमें कषाय का बिलकुल भी उदय नहीं रहता, उसे यथाख्यात चारित्र कहते हैं। यह आत्मा की साधना का अन्तिम स्वरूप है। आत्म चारित्र द्वारा अपनी आत्म-स्थिति को प्राप्त कर सिद्ध-बुद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

———

मुक्ति की राह

विश्वकर्मा की दो लड़कियां थीं—माया और मुक्ति। विश्वकर्मा जब वृद्ध हो गया तो उसने सोचा कि अपनी सम्पदा और राज्याधिकार को दोनों पुत्रियों में बांट दूं ताकि मेरे पीछे कोई बखेड़ा न हो।

मुक्ति ने जीव का लोकोत्तर भाग मांगा। उसे वह मिल गया। जो जीव शुभ कर्मों की साधना और भक्ति एवं त्याग करते हैं, वे मुक्ति के लोक में जाते हैं।

किन्तु मुक्ति आज अन्धविश्वासियों ने बड़ी सस्ती बना दी है। ज्ञान भक्ति एवं बुद्धि के बिना अन्धा है और विश्वास ज्ञान के बिना अन्धा है। सारे दुख का कारण त्रिदोष है। विषमावस्था के कारण कष्ट है। विश्वास बटा रहेगा तो कल्याण असम्भव है। कल्याण चाहिये तो अखण्ड सत्य पर विश्वास कीजिये।

वस्तु के पर्याय बदलते हैं, पर मूल में वह एक रहती है। सोने के अनेक प्रकार के आभूषण बन जाने पर सोना नहीं बदलता। पर्याय से नाम बदलते हैं। माया, नियम और स्वरूप आदि आज भी और कल भी लोक व्यावहारिक सत्य है, लेकिन आत्मा पर इनका प्रभाव नहीं पड़ता। आत्मा शुद्ध है उससे कर्म का सम्बन्ध प्रवाह रूप में है।

जीव और कर्म का सम्बन्ध है। निश्चित होकर बैठने से

काम नहीं चलता। यदि निश्चित होकर नियतवादी बन कर बैठना है तो पुरुषार्थ किस काम का? कानजी कहते हैं—होनहार ही दिखता है। पर होनहार पुरुषार्थ के आधार पर खड़ा है।

एकांगी दृष्टिकोण गलत है। हरएक चीज एक न एक दृष्टि से सत्य है। प्रत्येक वस्तु गुण-दोषमय है। जड़-चेतन गुण दोषमय है।

यदि होनहार ही है तो होना किसके आधीन है? पुरुषार्थ किसके आधीन है? जीव प्रकृति के, आत्मा के, आत्मा कर्म के। किसके आधीन है! आज का पुरुषार्थ भावी का होनहार है। पिछले कार्यों से फल की सम्बद्धता और फल का सम्बन्ध ही होनहार है। सभी जीव अपने कर्म के चक्कर को बदल देते हैं। पिछला पुरुषार्थ कर्म है, अगला जीवन है, जीवन को जीवित रखने वाला है। पुरुषार्थ से प्रबल नहीं है होनहार। वह पुरुषार्थ के आधीन है, स्वाधीनता नहीं है। उपादान मुख्य है। उपादान की अभिव्यंजना है—पूर्ण सत्य की प्राप्ति करो। तीनों का समन्वय करो। इस सम्बन्ध में शान्ति, सुख, संतोष और मुक्ति है।

'श्रद्धावान् लभेत ज्ञानं'—अश्रद्धालु को ज्ञान ज्योति प्राप्त नहीं होती और ज्ञान बिना चरित्र नहीं, ज्ञान व चारित्र नहीं तो दर्शन कहां से आयेगा?

जितना जितना मिथ्यात्व है वह क्रिया और कर्म काण्ड में विश्वास करता है बाह्य पाखण्ड और ढोंग उसका जीवन है। सत्य को सहारे की जरूरत नहीं पड़ती। वह अकेला ही सभी मंजिलें काट लेता है। लेकिन असत्य और मिथ्यात्व अकेले चलने से घबड़ाते हैं। जैसे चोर दिन में छिप कर रहता है और बाहर आने में डरता है, वैसे ही मिथ्यात्व और असत्य अकेले रहने से सामने आने से हिचकिचाते हैं।

असत्य जितना बड़ा होगा, उसका आडम्बर भी उतना ही बड़ा होगा।

बड़े बड़े चिमटे, धूनियां और मालायें थाम कर चलने वाले साधुओं को देखिये। अणुव्रत और हिमालय व्रत का दिनरात प्रचार करने वाले योगियों को देखिये। जीवन की सीधी-सादी सच्चाई, सेवा, त्याग और प्रेम के सगम को छोड़कर वे छोटे से पोखर में स्नान करके अपने को पुण्यशाली समझ कर फूले नहीं समाते।

मिथ्यात्व और आडम्बर लम्बे-लम्बे लबादे पहने, तिलक छाप लगाये और मुक्ति लोक में भेजने के परवाने लेकर आतां है, लेकिन उसका अन्त उतने ही बड़े आडम्बर में होता है। जितनः ही बड़ा मुर्दा होता है, उतनी ही बड़ी चिता भी होती है।

मिथ्यात्व से बचने के लिये आपको चाहिये कि सत्य को समझें, सम्यक् ज्ञान सत्य की ओर ले जायेगा।

भाइयों! विश्वकर्मा की दूसरी बेटी माया का जो उदाहरण मैंने ऊपर दिया है, उसके जाल से बचिये। 'माया महा ठगिनी हम जानी'—कबीरदास जी ने कहा है कि माया मोह बड़ ठगिया है। जो इनसे बच गया वह बच गया नही तो अनन्त काल तक दुख देखता है और नरक की यंत्रणाएं सहता है।

सत्य की खोज करने के लिये दूर भटकने की आवश्यकता नहीं। आपकी अपनी आत्मायें ही सत्य का निवास हैं। उसकी ज्योति को सदज्ञान से जागृत कीजिये और अखण्ड आनन्द को प्राप्त कीजिये।

कबीर ने एक जगह इसी आशय को लेकर लिखा है—
'वाहेरि नन्हिनि, तू कुम्हलानि, तेरे ही सरोवर पानी!'

तेरे सरोवर में ही तेरी आत्मा में ही परम तत्व परमात्मा निवास करता है, फिर भी जीव तूं क्यों भटक रहा है ? तूं नलिनि के समान पंक से—माया के पंक से, जरा ऊपर उठा कर देख तेरा राम तुझमें रम रहा है।

भाइयो ! मुक्ति के लिये मोह को छोड़ कर अपनी आत्मा को ज्ञान और चरित्र से उज्जवल कीजिये। आपका मार्ग आलोकित होगा। आपको परम प्रकाश मिलेगा। माया का अज्ञान-पूर्ण अन्धकार आपके सामने से हट जायेगा और आप आनन्द की अमर स्थिति में मुक्ति लोक में प्रविष्ट होंगे। वहां प्रेम ही प्रेम है। कोई अवरोध बाधा या बन्धन नहीं है। प्रेम में बन्धन नहीं होता है। माया मोह में बन्धन है। वे स्वयं सबसे बड़े बन्धन है। इन्हें तोड़ कर प्रेम का पन्थ अपनाइये, आप सीधे मुक्ति के मंगलमय महालोक में पहुंचेंगे।

अब प्रेम का अमृत भरा प्याला पीजिये। स्वयं पीकर अमर कीजिये। जो मोह में खुद मर रहा है, वह दूसरों को भी क्या करेगा। प्रेम ही जीवित रखता है, क्योंकि वह मीठा है, मोह कड़वा विष है। इसलिये—'यह मीठा प्रेम पियाला, कोई पियेगा किस्मत वाला।'

: तत्व चिन्तन :

१—आत्म सम्मान पहला रूप है, जिसमें महानता प्रगट होती है। किसी की दया से पेट पल सकता है, आत्म सम्मान नहीं, जहां भी रहो आत्म-सम्मान की रक्षा के लिये अपनी आवश्यक्ता पैदा करो।

२—शान्ति की विजय तो होती ही है, किन्तु उसके लिये परीक्षा की लम्बी घड़ियों को पार करना पड़ता है। उस लम्बे मार्ग के बाद शान्ति मिलती ही है।

३—आज संसार को खतरा केवल राजनीतिज्ञों, विधान-शास्त्रियों, समाज व्यवस्थापकों और न्याय-देवताओं से जितना है, उतना कदाचित अणु से कम भी नहीं।

४—इन्सानों को शासन करने दो, राजनीतिज्ञों को वन-वास के लिये विवश कर दो।

५—जगत का कोई भी बाह्य परिवर्तन मानव को वृद्ध नहीं बना सकता वरन् उसके अपने संस्कार ही उसके जीवन मोड़ के कारण हैं।

६—निराशावादी हर अवसर में कोई न कोई कठिनाई देखता है किन्तु आशावादी हर कठिनाई में अवसर देखता है।

७—मानसिक शान्ति संसार में नहीं, सत्संग मे मिलती है। बातों में नहीं अपितु मौन और चिन्तन से प्राप्त होती है।

किसी अज्ञात चिन्तक ने कहा है, तत्व का विचार उत्तम है, पुस्तकों का विचार माध्यम है, मंत्रों की साधना अधम है और दुनिया में भटकना अधमाधम है।

तत्व ज्ञान इस विराट विश्व के समस्त अगणित चिन्तकों की ज्ञाननिधि है, जिसने मानव के सामने आलोक विकीर्ण किया है। कर्तव्य का उद्बोधन किया है :

किन्तु कोरा तत्वज्ञान तर्क अथवा बुद्धि की कसरत ही नहीं होना चाहिये, उसका कुछ उद्देश्य भी होता है—'ऋते ज्ञानान्नमुक्ति' ज्ञान के बिना मुक्ति का पाना असम्भव है। ज्ञान को मुक्ति का उपादेय साधन मानने वालों को ही ज्ञान की कीमत हो सकती है। ठीक तत्व-विचारणा का भी साध्य स्वरूपावबोध है।

आत्मा क्या है !

अनात्मा क्या है !

यह विराट् विश्व क्या है !

इसमें शुभ, अशुभ तथा शुद्ध क्या है, बन्धन तथा बन्धनों से विमुक्ति क्या है ?

जीव और जड़ का सम्बन्ध क्यों कैसे और क्या है ?

अन्त में मैं इसी निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि समस्त तत्व-चिन्तन केवल इन तीन शब्दों में छिपा हुआ है—

क्या ! क्यों ! कैसे !

: हिंसा और अहिंसा :

मानव जाति के इतिहास में हजारों दोषों, त्रुटियों और पापों का रहस्य उदघाटन होता है, मनुष्य के बनाये विधान-शस्त्र जिस प्रकार मानव को उद्दाम उच्छृंखल वृत्तियों के नियामक है, साथ में उसकी अतीत निर्बलताओं के इतिहास भी हैं। दण्ड शास्त्र क्या है—मानव-कृत अपराधों का अतीत इतिहास !

आखिर उन अपराधों, दुर्बलताओं, क्रूर कर्म की वासनाओं में मूल भूत कारण क्या है ? केवल एक—और वह है हिंसा की अप्रकट दूर्वृत्ति। जैसे कि धर्म का अन्तर्भूत कारण एकमात्र अहिंसा है, उसी प्रकार पाप का मूल हिंसा है। आज तक जितने भी पाप हुए, अत्याचार, अनाचार, भ्रष्टाचार, के ववण्डर उठे, वे सब हिंसा प्रेरित थे, इसमें कुछ भी शंका नहीं, जैसे कि शुभ विचार-आचार सब अहिंसानुप्राणित होते हैं।

व्यक्ति से लेकर समष्टि तक के पाप पूण्य का हिसाब और

धर्म अधर्म की व्याख्या तथा शुभाशुभ कर्मों का व्यवहार केवल हिंसा अहिंसा इन दो शब्दो में समाहित हो गया है। सभी धर्मों की शुभ धारायें अहिंसा को लेकर वही हैं। जैन मे अहिंसा, बौद्धों में करुणा, इस्लाम मे रहीम, पूर्वी एशिया के ताओ और कन्फूसियस धर्मो में सहानुभूति तथा ईसाइयत में सेवा और भारत में दया और आदि शुभ प्रवृत्तियें उसी विराट अहिंसा की ओर आकर्षित हो रही है।

संसार की हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार तथा ममत्व सब उसी एकमात्र हिसा के अपर नाम हैं।

हिनस्तिसा ही हिंसा की व्युत्पत्ति होती है, जिसका अर्थ है कि वह अहितकर भावना तुझे मारेगी, तेरा विनाश करेगी जिसके द्वारा तू दूसरे प्राणियों का प्राण व्यपरोपण करता है। प्राण हनन व्यथित पीड़ित तथा बाधित करना भी है। और वह मन, वाणी तथा काया तीनों प्रकार से ही हो सकती है। हमारे कुछ विचारक कहते हैं कि हिमा दुवृत्ति का विरोध अहिंसा से ही हो सकता है, और उसका मार्ग है हिंसा न करना। उसके लिये हमें कहना होगा कि हिंसा न करना ही अहिंसा हुई तो अहिंसा का विधेय मार्ग कौनसा रहेगा। अहिंसा तो एक धर्म है, कोरा निषेधात्मक ही मार्ग है, अपितु उसका भी अपना कुछ महत्व है। अहिंसा का विधायक दृष्टिकोण ही संसार के लिये अधिक शुभकर है और उसे जो लोप करता है वह समूचे विश्व से और अहिंसा से अन्याय करता है।

हिमा नही करना:—हिंसा करते हुए को रुकवाना, हिंसा रोकने वाले को प्रोत्साहित करना।

रक्षा करना:—करवाना, प्रोत्साहित करना यह सब अहिंसा के ही रूप हैं।

यही है अहिंसा का विराट् दर्शन, क्योंकि हिंसा जैसे अनेकों प्रकार की होती है उसी प्रकार अहिंसा भी अनेकों

प्रकार की। हिंसा जिस मार्ग से घुसेगी, अहिंसा उसका उसी प्रकार प्रतिकार करेगी। हिंसा की शक्ति से अहिंसा उसका उसी प्रकार प्रतिकार करेगी। हिंसा की शक्ति से अहिंसा की शक्ति अनन्तगुणा अधिक है। हिंसा ने तो मानव को पापी, शैतान, नीच, दुष्ट ही बनाया। किन्तु अहिंसा ने इन्सान को मानवी चोले में भगवान का पद दिया, अहिंसा भगवती है जो समूचे विश्व के प्राणियों पर समत्व स्थापित किये बिना प्रकट ही नहीं हो सकती। बस सब की दया करो, रक्षा करो, पशुवध रोको, इसी में ही अहिंसा का विधायक मार्ग है। श्रमण भगवान महावीर इसी प्रकार की विधायक अहिंसा को सच्ची अहिंसा मानते थे, अतः जैन शास्त्र प्रश्न व्याकरण सूत्र के संवर द्वार में भगवान महावीर ने तस्सथावर खेमकरी भावना को अहिंसा कहा - और तदनुरूप आचरण को ही अहिंसा को सर्वश्रेष्ठ मार्ग माना है। समस्त जीवों का कुशल क्षेम चाहना यह बहुत बड़ी भावना है। कुशल क्षेम की भावना में जो अनुराग और करुणा का निर्झर बह रहा है तथा प्रेम की वंशी बज रही है, वह ही मुक्ति का सच्चा शाश्वत आनन्द है।

सभी जीवों की अहिंसा को मनीषियों ने इस प्रकार विभाजित किया है।

समस्त प्राणियों के प्रति मित्रता,
गुणियों के प्रति प्रमाद,
दुःखी-आर्त जीवों के प्रति करुणा,

और विपरीत वृत्ति वालों के प्रति माध्यस्थ वृति रखना अहिंसा है। अहिंसा का अर्थ है प्रेम करना, आदरवान बनना तथा निष्ठा को सजग और प्राणवान बनना तथा सत्य की सर्वोच्च सत्ता का पूर्ण विश्वास करना।

विश्व में अहिंसा एवं तकनीकी विज्ञान चरम सीमा पर पहुँच गया है। अब इसके आगे विनाश के सिवा कुछ नहीं है। ऐसे समय में विश्व में अहिंसा, अप्रिय ग्रह एवं अध्यात्मिक विकास के विचारों को विश्व में फैलाने का

मुनि सुशील कुमार जी का योगदान

मानव जाति के कल्याण के लिए संजीवनी का काम करेगा।

इस महान कार्य के लिए

महाराज श्री जी के चरणों में

हम सब सदस्यों का सविनय

ंदना एवं हार्दिक मंगल-कामनायें

स्वीकार कीजिये !

मन्त्री :
ोशन लाल जैन
७५१६४

प्रधान :
वकील चन्द जैन
७७०१२

मित्र मिलन

जैन नगर, मेरठ शहर।

विश्व वन्दनीय मुनि

श्री सुशील कुमार जी महाराज

जिन्होंने

अपनी विदेश-यात्रा में

असंख्य युवकों को

अहिंसा और सद् आचरण

की दीक्षा दी

हमारा कोटि-कोटि नमन !

प्रधान ।
सत्यपाल जैन

मंत्री ।
कैप्टन धनराज जैन

यंग फ्रेन्डस एसोशियेसन

जैन नगर, मेरठ ।

महाराज श्री सुशील कुमार जी

के

स्वदेश आगमन पर

हार्दिक अभिनन्दन !

मेहताब चन्द जैन
मैट्रो पोलिटिन काउन्सलर
२००, किनारी बाजार, नौघरा
दिल्ली–६

कष्ट उठा, जग का हित करते,
सन्त, सुजन, सरिता औ चन्दन।
जग उपकारी, मुनि सुशील के,
चरणों में श्रद्धायुत वन्दन॥

मुनि श्री सुशील कुमार जी के

विदेश-यात्रा से वापस

स्वदेश पधारने पर

हार्दिक वन्दन के साथ अभिनन्दन!

मुनि श्री सुशील कुमार जी

की

मंगलमय विदेश यात्रा

से

वापस लौटने पर

हरियाणा जैन समाज

की ओर से

हार्दिक अभिनन्दन !

जिनेन्द्र कुमार जैन
कुरुक्षेत्र विश्व विद्यालय
कुरुक्षेत्र

मुनि श्री सुशील कुमार जी

की

मंगलमय विदेश-यात्रा

से

वापस लौटने पर

शुभ कामनायें !

तेज प्रकाश कौशिक

अहिंसा भवन,

शंकर रोड, नई दिल्ली

सोने की परीक्षा अग्नि में होती है !

किन्तु,

सन्त की परीक्षा

निन्दा-प्रशंसा के क्षणों में होती है !

मुनि श्री सुशील कुमार जी

ने निन्दा एवं प्रशंसा का समान भाव से

स्वागत कर

सहस्त्र-सहस्त्र जनों की

श्रद्धा प्राप्त की है !

परम संत को हार्दिक वन्दन !

मन्त्री :
जुगल किशोर जैन

प्रधान :
प्रीतम चन्द जैन

स्वाध्याय सभा

जैन नगर, मेरठ।

जैन जगत के ज्योतिर्धर हे,
विश्वधर्म के हे नव प्राण ।
तुमने ऊंचा किया निरन्तर,
भारत भूमि का अभिमान ॥

मुनि सुशील कुमार जी महाराज

के

४२ सप्ताह की विश्व-यात्रा पश्चात स्वदेश आगमन

पर

हार्दिक मंगल कामनाओं

के साथ

मुनि श्री सुशील कुमार जी

को

अ. भा. चौरासिया ब्राह्मण महासभा

की ओर से

स्वदेश वापसी पर

शुभ कामनायें !

बिहारी लाल शर्मा
बी० ए०
जनरल सेक्रेटरी
बाजार सीताराम, दिल्ली

परम सन्त

मुनि श्रेष्ठ श्री सुशील कुमार जी

की

सफल विदेश यात्रा

के बाद

उनके स्वदेश आगमन पर

हार्दिक अभिनन्दन !

ऑल इण्डिया दिगम्बर भगवान महावीर २५०० वां निर्माण महोत्सव सोसायटी (मेरठ सम्भाग)

मंत्री मेरठ सम्भाग	अखिल भारतीय प्रधान मंत्री
प्रेम प्रकाश जैन	सुकुमार चन्द जैन

मानव मात्र के प्रति जिनके हृदय में

असीम प्रेम एवं सद्भाव हैं

उन

मुनि श्री सुशील कुमार जी

के

सफल विदेश-यात्रा के पश्चात स्वदेश आगमन

पर

शत्-शत् वन्दन !

ला० नन्दूशाह वकील चन्द जैन)

ओसवाल क्लाथ स्टोर

गुदड़ी बाजार, मेरठ शहर ।

फोन : ७५२२०

७७०१२ निवास

महाराज श्री मुनि सुशील कुमार जी

के

विदेश भ्रमण की वापसी पर

शत् शत् नमन !

प्राणी मित्र

आनन्द राज सुराणा

नई दिल्ली

अपनी विदेश-यात्रा में

हर नारी को

मातृत्व की सही दिशा की दीक्षा

अहिंसा का सन्देश

और

नारी चरित्र को उन्नत करने की राह

दिखाने वाले

परम भारतीय संत

विश्व वन्दनीय मुनि

श्री सुशील कुमार जी

का

हार्दिक अभिनन्दन !

मंत्री :
श्रीमती विद्यावन्ती जैन

प्रधान :
लीलावन्ती जैन

महिला मैत्री संघ

जैन नगर, मेरठ

भारतीय संस्कृति के प्रबल प्रचारक
अहिंसा और सत्य के संदेशवाहक

मुनि श्री सुशील कुमार जी

आधुनिक विवेकानन्द बनें

यही हमारी हार्दिक शुभ कामना है !

शंकर देव

संसद सदस्य
१६, नार्थ एवेन्यु, नई दिल्ली

चियता :—

- एक विश्व एक सरकार
- उल्टी खोपड़ी
- क्या ईश्वर है ?
- इन्द्रा गांधी समग्र रूप में
- सदा निराहारिणी
- माणिक्या योगिनी
- मौलिक आधार याद रख लिये मौलिक कर्त्तव्य भूल गये

महाराज श्री सुशील कुमार जी

के

स्वदेश आगमन पर

हार्दिक अभिनन्दन !

कैलाश चन्द जैन
२२, कोटला मार्ग
नई दिल्ली
(विनय नगर)